Pratnakīrti, Volume 5, Issue 2, 2024 ISSN: 2322-0694

कीरग्राम के दो अभिलेख

राजीव कुमार 'त्रिगर्ती'

ग्राम - लँघू, पोस्ट - गाँधीग्राम,
जिला - काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश.
rajeevtrigarti@gmail.com
Phone +919418193024

सारांश

इतिहास की परतों को खोलने का सबसे जीवित साधन अभिलेख ही होते हैं। हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा जिले में पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक महत्त्व का स्थल मन्दिर है। इस मन्दिर की दक्षिणी और उत्तरी दीवारों पर प्रस्तर शिलाओं पर दो अभिलेख उत्कीर्ण हैं। दोनों अभिलेखों का सम्बन्ध मन्दिर निर्माण से है तथा इन दोनों में मन्दिर को दिये गये भूमि तथा आर्थिक सहयोग का विवरण प्रस्तुत किया गया है। अध्येताओं के मतों के उपरान्त इन दोनों अभिलेखों का काल ग्यारहवीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल स्वीकार किया गया है। अभिलेखों के विवरणों के आधार पर इनका काल ही मन्दिर निर्माण का काल भी सिद्ध होता है। अभिलेखीय विवरणों में इस स्थान का नाम 'कीरग्राम' उल्लिखित है जिससे इस क्षेत्र में कीर जाति का आधिपत्य स्पष्ट प्रमाणित होता है। मन्दिर निर्माण काल के समय यह क्षेत्र त्रिगर्त सत्ता के अधीन था और मन्दिर निर्माण भी जालन्धर अथवा त्रिगर्त के अधिपति द्वारा ही संरक्षित था।

मुख्यशब्द: कीरग्राम, लक्ष्मणचन्द्र, जयचन्द्र, त्रिगर्त, मन्युक, आहुक, नवग्राम, प्रलम्ब, राजानक, जालन्धर, सुशर्मपुर

इतिहास निर्माण में अभिलेखों की भूमिका को एक जीवन्त प्रमाण के रूप में देखा जा सकता है। इतिहास निर्माण में जिन तत्त्वों की आवश्यकता होती है, उनकी पर्याप्त मात्रा में सहजतम उपलब्धि अभिलेखों के माध्यम से ही होती है। इतिहास के सामान्यतः बाह्य और आन्तरिक दो पक्ष होते हैं। बाह्य पक्ष में किसी देश विशेष की भौगोलिक स्थिति का आकलन किया जा सकता है और आन्तरिक पक्ष से तात्पर्य राजवंश, शासन-प्रबन्ध, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और आर्थिक परिस्थितियों से है। अभिलेखों के माध्यम से इन दोनों पक्षों को लेकर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। अभिलेखों में यह दोनों तरह की सामग्री उन पर किए गये गम्भीर अध्ययन के उपरान्त सामने आती है जो इतिहास को जीवन्तता प्रदान करवाती है।

अधिकांश अभिलेखों का सम्बन्ध राजवंशों से होता है और राजवंशीय अभिलेखों से ही हमारे सामने तत्कालीन नगरों, राज्य सीमाओं, मार्गों और विजयप्रयाणों के विवरणों से भौगोलिक वातावरण का एक प्रारूप प्रस्तुत हो जाता है। अभिलेखों के प्राप्ति-स्थल से राज्य के सीमा विस्तार का भी आकलन किया जा सकता है। तात्कालिक विजय-प्रयाणों के मार्गों से व्यापारिक एवं यातायात सम्पर्कों पर भी दृष्टिपात किया जा सकता है। राजवंशीय अभिलेखों में ही दान आदि के प्रसङ्गों से आर्थिक सुदृढता के साथ नदियों, तटवर्ती नगरों

Lalashankar Gayawal and Umesh Kumar Singh (Ed.) pp. 15-45
© Pratnakīrti Oriental Research Institute, Vārāṇasī, U.P., India
Recieved 1 March 2024, Revised 30 July 2024, Accepted 16 September 2024
This paper is available at https://www.pratnakirti.com/Home/Index

और धार्मिक स्थलों के विवरण भी बड़ी सटीकता के साथ उपस्थित होते हैं। कई अभिलेखों में उत्कीर्ण प्रशस्तियों में सामान्यतः निकटवर्ती राजाओं और प्रदेशों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। अभिलेखों में वर्णित विजय यात्राओं से अनेक राज्यों की सीमाओं और मार्गों की प्रामाणिकता पुष्ट होती है क्योंकि किसी भी शत्रु राज्य की सीमा में अतिक्रमण किसी सुगम मार्ग से ही सम्भव हो सकता है। आन्तरिक पक्ष में भी अनेक दृष्टियों से अभिलेखों का महत्त्व प्रस्तुत होता है। यदि अभिलेखों में प्रस्तुत अतिशयोक्ति पक्ष को किनारे कर दिया जाए तो पुरातात्त्विक सामग्री के सङ्कलन में अभिलेखों की भूमिका अग्रगण्य होती है। अभिलेखों के अध्ययन-मन्थन के फलस्वरूप ही इतिहास की निर्विवादित सामग्री उपलब्ध होती है।

अभिलेखों में वंशवृक्ष के सन्दर्भ में भी पुष्ट प्रमाण प्राप्त हो जाते हैं। इनके माध्यम से प्राचीन शासन व्यवस्था की रूपरेखा का भी बोध हो जाता है। तत्कालीन कर व्यवस्था का भी पता चलता है। दान आदि के प्रसङ्गों में व्यापार, वर्णाश्रित जातीय व्यवस्था आदि से सामाजिक स्थिति का भी बोध होता है। दानादि की प्रवृत्ति से धार्मिक स्थिति का मूल्याङ्कन करना भी सुगम हो जाता है। अभिलेखों के माध्यम से सामाजिक पक्ष पर विचार करते समय आध्यात्मिक उन्नति के आकलन के साथ-साथ भौतिक उन्नति का भी विस्तृत पक्ष उपस्थापित होता है। दान सम्बन्धी विवरण इस पक्ष में अधिक प्रामाणिक होते हैं।

शिलालेखों में दान के अवसरों, धार्मिक अवसरों, विजय यात्राओं, सामाजिक तथा आर्थिक उत्कर्ष के आयोजनों का भी क्रमबद्ध उल्लेख मिलता है। व्यापारिक संस्थाओं और सम्भ्रान्त लोगों के माध्यम से मन्दिरों के लिए दिये गये दान और उसके प्रकार का भी पता चलता है।

अधिकांश अभिलेखों का प्रारूप साहित्यिक होता है। वे श्लोकबद्ध या विशेष साहित्यिक रीति के गद्य में उत्कीर्ण होते हैं। अलङ्कार-रस आदि के प्रयोग से उनकी साहित्यिकता में निखार दृष्टिगत होता है। इसके साथ ही उस समय की सामान्य या विशेष प्रचलन की भाषा का भी पता चलता है। जैसे कि दूसरी शती से बारहवीं शती के शिलालेखों की भाषा प्रायः संस्कृत ही पायी जाती है। कुल मिलाकर देखा जाये तो अभिलेख अपने लघु कलेवर में भी तात्कालिक बहुपक्षीय विवरण का मोटा-मोटा खाका प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

प्रस्तुत लेख का मूल प्रतिपाद्य काँगड़ा जिले में स्थित बैजनाथ के शिव मन्दिर के सभामण्डप की भीतरी दीवारों की दक्षिण और उत्तर की दिशाओं में लगी शिला-पट्टिकाओं में उत्कीर्ण दो अभिलेखों की विषय-वस्तु के सन्दर्भ में विवरण प्रस्तुत करना है।

बैजनाथ मन्दिर के प्रवेशद्वार के अन्दर सभामण्डप के भीतर उत्तर दिशा और दक्षिण दिशा की दोनों दीवारों पर प्रस्तर पर उत्कीर्ण दो अभिलेख हैं। दक्षिण दिशा के शिलालेख को पहले शिलालेख के रूप में स्वीकार किया गया है तथा उत्तर दिशा के शिलालेख को दूसरे शिलालेख के रूप में उद्धृत किया गया है। अलेग्ज़ेंडर कनिंघम ने 1846 ई॰ में इन दोनों को उतारा था और 1849 ई॰ में *शिमला अखबार* के लिए इसके कुछ महत्त्वपूर्ण हिस्से का अनुवाद उसके सम्पादक बाबू शिव प्रसाद द्वारा किया गया था।[1] दोनों शिलालेख शारदा लिपि में हैं और दोनों की भाषा संस्कृत है। पहले शिलालेख में अलग-अलग छन्दों में 34 पङ्क्तियों में 39 श्लोक हैं। दूसरे शिलालेख में 33 पङ्क्तियों में 37 श्लोक हैं और इसमें भी छन्द वैविध्य है।

[1] Alexander Cunningham CSI, *Archological Survey of India, Report for the year 1872-73*, Volume V, Page 180

प्रस्तुत आलेख का शिलालेखों के सन्दर्भ में होने के कारण अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए मूल शिलालेखों को प्रस्तुत करना भी आवश्यक हो जाता है। मूल के उपरान्त भावानुवाद के माध्यम से उनके सन्दर्भों को समझना भी सुविधाजनक होता है। विशेष सन्दर्भों के माध्यम से शिलालेखों से प्राप्त सामग्री का विवेचन के द्वारा एक निष्कर्ष भी प्रस्तुत हो जाता है। इन समस्त आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही सर्वप्रथम पहले शिलालेख के मूल प्रारूप को देवनागरी में प्रस्तुत करने के साथ उसका भावानुवाद और अन्त में पहले शिलालेख के विशेष सन्दर्भों को रखा गया है। इसके उपरान्त दूसरे शिलालेख को भी उसके मूल प्रारूप, भावानुवाद एवं विशेष सन्दर्भ के क्रम में रखा गया है। अन्त में शिलालेखीय निष्कर्ष के रूप में दोनों में पायी गई समानता के साथ इनके काल के सन्दर्भ में भी विशद् चर्चा प्रस्तुत की गयी है।

दोनों ही शिलालेखों में कुछ अंश क्षरित है। वहाँ कनिंघम, बुह्लर और अन्य अध्येताओं ने अपने-अपने तरीके से पाठों को पूर्ण किया। यहाँ बुह्लर द्वारा प्रस्तुत पाठ को प्रस्तुत किया है क्योंकि उसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। मैंने स्वयं पहले शिलालेख के साथ उसका मिलान किया है, जो असमञ्जस की स्थिति उत्पन्न नहीं करता। साथ ही उपर्युक्त विद्वानों के पाठ में रह गये अवग्रह (ऽ), समास चिह्न (-), पदच्छेद आदि को यथास्थान समायोजित कर दिया गया है।

1 शिलालेख: 1 (मूल)

बुह्लर द्वारा किया गया दोनों शिलालेखों का यह पाठ मुझे देवेन्द्र हाण्डा की पुस्तक 'A Holy Jyotirlinga' में निम्नवत् प्राप्त हुआ, जिसे उन्होंने Epigraphia Indica Vol. I pp.104-19 से लिया है। पाठ में अस्पष्टता या दुविधा के स्थलों को ( ) कोष्ठक के अन्दर रखा गया है।

(बुह्लर द्वारा सम्पादित प्रथम शिलालेख)[2]

ओं (स्वस्ति ओं) नम(ो ग)णपयो(ः)।

यद्यप्यहं पशुपते कुमति(द्र) एव
पर्याप्तभक्तिविव(शे)न मया त(था)पि।
अस्यां स्तुतौ (श्र)वणले ह्यर सांशभा(जि)
(गौर्य)ा सहैव परमेश निमन्त्रितोऽसि॥ 1॥

पा(शच्छेद)न (क)र्तरि प्र(ण)मतां मोहान्धकूपब्रुड-
(ल्लोक)प्रोहरण(क्षमे) नि(रु)पमानन्देक(सं)दायिनि।
दुर्गे द्वार ०-० हारिणि हरिब्र(ह्मा)दि देवस्तुते
भक्तिक्षेमविधायिनि त्रिनयने त्वय्येव न(स्वा)मिनि॥ 2॥

व्यापद्दलि(समू)ल(पा)टन(क)री त्वं गीयसे स(र्वदा)

[2] *A Holy Jyotirlinga Vaidyanatha*, Page 83–86

(मा)ता त्वं जगतस्तवास्ति न मिति(स्खे)षां महिम्नामिह।
उक्तिः केवलमेव (शो)भत इयं नो देव (मा)तेति ते
संसर्गः पि(तृ)काननैरु(पचि)तै(रा)श्रीयते च (त्वया) ॥ 3 ॥

यस्य(ा) हिमालयो(त्कर्ष)पोषिणी (मू)र्तिरुत्तमा।
तस्या नमन्ति चरणौ धन्याः केचन जन्तवः ॥ 4 ॥

धन्यै(र्न)रैरु(ग्र)वधूस्सदैव (त्व)मुद्यसे (भ)क्तिभराभिरामैः।
केशापहारोऽतिमनोहराभिर्वा(ग्भि)ः क(वीना)मुपगीय(से) च ॥ 5 ॥

आसन्नमृत्युत्वदशामुपेयुषां पुरेषु नास्याममरेषु कुर्वताम्।
सत्यं भवानीशरणाभिलाषिणां मनोरथं पूरयितुं प्रगल्भते ॥ 6 ॥

मुहुस्समुद्रासिन एव यु(द्ध)क्री(ड)ानिकृतासुरस(र्म)प(स्य)।
सत्यं हरेरप्युपरि त्वमेव सन्तिष्ठसे नि(ष्ठु)रैवार्थधाम्नः ॥ 7 ॥

(म)लादिहृदयाह्लादिद(र्श)नतो दिने दिने।
बहुदेहान्तर(स्था)णु(स्त्व)मेव किल कथ्यसे ॥ 8 ॥

प्रसरन्नमरीचिचयचन्द्रचारुणा वदनेन राजसितरामतिश्रिणा।
बहुशोणिमाद्रिगुणसम्पदालयौ परिपूजयन्ति चरणौ तवामराः ॥ 9 ॥

त्रैलोक्यजनन्यां त्वयि करुणावति युज्यते नृणां भक्तिः।
त्रैलोक्यान्तरनिलयं त्वं हि (ज)नं नयसि परमपदम् ॥ 10 ॥

गिरिजेशाधिखिन्नो(ऽस्मि) त्वं गतिर्भव साम्प्रतम्।
संसारसागराच्चेतो भीरु मे नीयतां शमम् ॥ 11 ॥

शिवायेकविनन्तव्यपुण्यपादाग्रपांसवे।
तुभ्यं (क्षुभ्य)द्रिपुध्वंसमहाशक्तिमते नमः ॥ 12 ॥

चञ्चच्चापलसद्दृष्टिर्विषमेषु प्रयोजक(ः)।
त्रैलो(क्ये) स्त्रीजनो योऽत्र तस्य त्वमधिदैवतम् ॥ 13 ॥

(शोभि)ता(नां) त्रिभिर्नेत्रैर्मृ(डा)नि शरणैविणाम्।
वपुश् श्रीमदविध्वंसं विधातुं प्रजगल्भिषे ॥ 14 ॥

आपत्कलापमेलापपरितापप्रलापिनम्।
गौरीशास्ति विभोहात्कं (कस्त्रा)तुमपरः क्षमः ॥ 15 ॥

शर्वाणिमानं त्वद्भक्ताः यान्ति सर्वातिशायिनम्।
प्रसीद मातस्संसाराच्छ्रीघ्रमेव विमोचय ॥ 16 ॥

गाढा गजानने प्रीतिस्स(र्वमी)हि वपुस्सदा।
उद्दीपितस्मरा दृष्टिर्यस्यास्ते तत्पदं नुमः॥ 17॥

इति रामेण निरामय सममुमया यन्मया स्तुतोऽसि विभो।
श्रुत्वा तममोघीकुरु परिश्रमं परमकारुणिक॥ 18॥

एकोक्त्या स्तोत्रमिदं गौरीश्वरयोः पठन्ति ये भक्त्या।
तेषामप्यभिलाषस्सिध्यतु शिवयोः प्रसादेन॥ 19॥

इति गौरीश्वरस्तोत्रम्॥

अस्ति शीतलगभस्तिशेखर त्वत्प्रशस्तिकरणेऽकुतोर्हता।
किन्तु पावकमयाक्ष तावकी भक्तिरिव जडतां भनक्ति नः॥ 20॥

अद्यापि विस्मापयितार एते विद्यन्त एवेश्वरभक्तिमन्तः।
विचित्रचारित्रनिधिर्यथैव राजानको लक्ष्मणचन्द्रनामा॥ 21॥

केदारयात्रां विरचय्य येन विशोधनीं प्राक्तनदुष्कृतस्य।
इतः परं सर्वपरस्त्रियो मे स्वसार इत्येव कृता प्रतिज्ञा॥ 22॥

किमेतदाचर्यमवार्यवीर्यैर्यदेवयोधैर्युधि दुष्प्रध(र्ष)ः।
धनुर्धराणां धुरि यो मनोभूर्बभूव तस्याप्यविधेय एव॥ 23॥

अद्येश्वराः मन्दपराक्रमत्वं मत्वा विपक्षैरवधारिताज्ञाः।
(व)ास्तव्यनारीहठस(ङ्ग)मेन पुराधिपत्वं सफलं विदन्ति॥ 24॥

नवं वयोरूपमधिश्रिदातृता पुराधिपत्यं बहवः प्रियङ्कराः॥
तथापि चेतः परदारवर्जि चेत्किमस्तिदुस्साधमतः परं तपः॥ 25॥

राजानकस्य प्रविशुद्धबुद्धेः पाणिः कृपाणग्रहणप्रवीणः।
विवर्जयामास विगर्हितानि तस्य(ा)न्यनारीस्तनमर्दनानि॥ 26॥

तस्यास्ति देशेऽत्र वणिक्प्रसिद्धस्सिद्धात्मजो मन्युकनामधेयः।
छिन्नेत्यविच्छिन्नमहेशभक्तेर्मातावदातचरितस्य य(स्य)॥ 27॥

यस्याहु(का)ख्योस्त्वविभक्तवित्तौ भ्राताकनिष्ठस्सुकृतैकनिष्ठः।
व्यग्रा समग्रातिथिपूजनाय गुल्हेति गर्हारहिता च भा(र्या)॥ 28॥

भक्ति(द्रुवाटे) भसलेन ते(न) (स)भ्रातृकेन त्रिपुरान्तकस्य
द्वारस्थगङ्गायमुनादिमूर्तिः कृता पुरीयम् सह मण्डपेन॥ 29॥

भस्त्रागर्भगृहीतसर्वविभवा नेदिष्ठदेशे क्वचिद्
ये कुर्वन्ति गतागता वणिजो गण्या वराकाः क्व ते।
धन्यो मन्युकनामधेय इह हि श्रीकण्ठरज्यन्मनः

पोतप्रोतविवेकवेतनधनो मोहार्णवे तीर्णवान् ॥ 30 ॥

देवद्विजगुरुभक्तस्सौजन्यनिधिर्गुणिप्रियो दाता ।
आसुकसुतोऽस्ति विप्रो रल्हणनामा सुशर्मपुरे ॥ 31 ॥

तेन दैवज्ञधुर्येण धान्यद्रोणद्वयं शिवे ।
वहमान(स्व)भूपृष्ठान्नवग्रामात्समर्पितम् ॥ 32 ॥

इहत्येन नवग्रामाद्दत्ता चा(त्र)ह(लार्ध)भूः ।
गणेश्वरेण गोविन्दद्विजपुत्रेण धीमता ॥ 33 ॥

देपिकाङ्गजनितेन मल्हिका सूनुना विततवित्तशालिना ।
जीवकेन वणिजा निजा च भूः प्राङ्गणाय पुरतश्शिवेऽर्पिता ॥ 34 ॥

(या)वदे(व) भगवा(न्भुवाम्प)तिर्व्योमकोम(लरु)चिश्च गाहते ।
मन्युकाहु(ककृत)श्शिवालयस्तावदस्तु सममन्यसासनः ॥ 35 ॥

आसिकात्मज (उ)दारधी(र्व)सन्सूत्रधारधुरिनायकाभिधः ।
श्रीसुशर्मनगरादिहाययौ (सम्म)नस्य तनयश्च ठोढुकः ॥ 36 ॥

तेन तेन य सहैव टङ्किता प्रोन्नता शिवपुरी समण्डपा ।
(शा)सुदृष्टिमनुसृत्य नि(र्मि)ता यत्र भान्ति गणवर्गमू(र्तयः) ॥ 37 ॥

शृङ्गाराभृङ्गकौ यस्य पितरौ पुण्यशालिनौ ।
स प्रशस्तिमिमां चक्रे रामनामा क(वी)हरः ॥ 38 ॥

संवत्सरेऽशीतितमे (प्र)स(त्रे) (ज्येष्ठ)स्य शुक्लप्रतिपत्तिथौ च ।
श्रीमज्जयचन्द्रनरेन्द्रराज्ये रवेर्दिने रामकृता प्रशस्तिः ॥ 39 ॥

(शककालगताब्दाः) 6

2 शिलालेख 1 (भावानुवाद)

☞ जय हो ! ॐ, गणों के दोनों स्वामियों (शिव और पार्वती) को प्रणाम! (बुह्लर इसे गणपयोः' के रूप में लिखते हैं, परन्तु चतुर्थी के प्रयोग की दृष्टि से गणपतये ही समीचीन होगा।)

☞ 1.हे पशुपति, यद्यपि मूढ़/अविवेकी हूँ तथापि आपकी परम भक्ति में लीन हो कर, गौरी सहित श्रेष्ठ परमेश्वर आपका मैं इस स्तुति से आह्वान करता हूँ, जिसमें मेरे गहन भक्ति भाव का मात्र कर्ण प्रिय अंश है।

☞ 2(अ) हमारा प्रणाम केवल आपको है, जो अपने भक्तों को बन्धनों से मुक्त करने वाले हैं। माया के अन्धकूप में पड़े हुए भक्तों के तारणहार! हे अतुलनीय आनन्द प्रदायक

...हारी! केवल जिनका गुणगान हरि, ब्रह्मा व अन्य देवता भी करते हैं, हे त्र्यम्बक स्वामी! आप हमारी रक्षा करें।

☞ 2(आ) हमारा प्रणाम केवल आपको, हे त्र्यम्बक(त्रिनेत्र) स्वामिनी, अपने भक्तों को बन्धनों से मुक्त करने वाली, माया के अन्धकूप में पड़े हुए भक्तों की तारणहार, हे अतुलनीय आनन्द प्रदायिनी.....हारिणी! केवल जिनका गुनगान हरि, ब्रह्मा व अन्य देवता भी करते हैं, हे दुर्गा ! आप हमारी रक्षा करें।

☞ 3(अ) कष्टरूपी बेल के समूल नाशक गजेन्द्र के रूप में सदा ध्याये जाने वाले, हे जगत के सर्जक, आपकी लीला अपरम्पार है। हे परमात्मा, हे परमसत्ता की सटीक संज्ञा, आप चिताओं से भरपूर श्मशानों में विचरण करते हो!

☞ 3(आ) कष्ट रूपी बेल की समूल नाशिका के रूप में सदा ध्यायी जाने वाली हे जगजननी! आपकी महानता असीम है। हे देव माता की सटीक संज्ञा, आप अपने पिता हिमालय के घने वनों में वास करती हैं!

☞ 4(अ) कुछ धन्य प्राणी उनके (शिव के) चरणों में झुकते हैं, जिनका प्रखर सौन्दर्य सर्पों की माला से अतिशय वृद्धि को प्राप्त होता है।

☞ 4(आ) कुछ भाग्यवान् प्राणी उनके (पार्वती के) चरणों में नतमस्तक होते हैं, जिनका अद्वितीय सौन्दर्य हिमालय की उत्कृष्टता को अतिशय वृद्धि प्रदान करता है।

☞ 5(अ) जो भगवान् शङ्कर की भक्ति में तल्लीन हैं, ऐसे धन्य हुए पुरुषों के द्वारा आप सदैव उग्र के रूप में पूजे जाते हैं। अर्द्धनारीश्वर के रूप में दुःखों का निवारण करने वाले आप, मधुरवाणी से ओत-प्रोत रचनाओं के माध्यम से कवियों द्वारा गाये जाते हैं।

☞ 5(आ) जो अपनी भक्ति के कारण आपको अत्यधिक प्रिय हैं, ऐसे धन्य हुए पुरुषों के द्वारा आप भगवान् शिव की पत्नी के रूप में पूजी जाती हैं। कवियों की रचनाओं की आकर्षक शैली के माध्यम से आप विपदाओं का निराकरण करने वाली के रूप में गायी जाती हैं।

☞ 6(अ) हे ईश्वर! तुम वास्तव में ही उन मनुष्यों की इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ हो, जो मृत्यु के समय तुम्हारी प्रार्थना में रत होते हैं। जो देवलोकों को प्राप्त करने में उत्सुक न होकर तुम्हारी भक्ति के परमानन्द की कामना करते हैं ।

☞ 6(आ) हे भवानी! आप वास्तव में ही उन उन लोगों की इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ हैं, जो मृत्यु के समय भी देवलोक में जाने की अपेक्षा तुम्हारी ही शरण में जाना चाहते हैं।

☞ 7(अ) वास्तव में आप अकेले ही हरि से भी ऊपर हैं जो निरन्तर क्षीरसागर में विश्राम की मुद्रा में विराजमान हैं। जो युद्ध-क्रीड़ा में कटे हुए दैत्यों के शरीर से निःसृत रक्त की धाराओं का पान करते हैं तथा जो प्रलयङ्कारी शक्ति की क्षमता से युक्त हैं।

☞ 7(आ) निश्चित रूप से आप अकेली ही अपने सिंह पर सवार होती हैं जो घूम-घूम कर शत्रुओं को रौंदता है तथा आपके द्वारा युद्ध-क्रीड़ा में मार डाले गए दैत्यों का रक्तपान करता है जो अत्यधिक विनाशक/ मारक क्षमताओं से परिपूर्ण है।

☞ 8(अ) मलीनता एवं अन्य बन्धनों से छुटकारा दिलाने वाली शिक्षा एवं अभिभूत करने वाले आनन्द के अनुसार विविध शरीरों में अधिष्ठित आत्मा आप ही हैं।

☞ 8(आ) अभिभूत करने वाले आपके दर्शन मात्र से ही मलिनता से हृदयों का रक्षण होता है और आनन्द का सञ्चार होता है। आप (पार्वती) विभिन्न देहों में उनकी प्राणभूत शक्ति के रूप में सञ्चरित हो।

☞ 9(अ) आप अपने मुख की अतिशय आभा से जो चन्द्रमा की अगणित किरणों से और भी प्रभापूर्ण हो रहे हैं तथा पार्वती के सौन्दर्य का भी अतिक्रमण करते हैं। अमरत्व को प्राप्त हुए पुरुष, विविध उपचारों से अनेकानेक गुणों के धाम/वास आपके चरणों का वन्दन करते हैं।

☞ 9(आ) आप चन्द्रमा के समान सौन्दर्य से युक्त मुख वाली हैं। आपका विविध किरणों से देदीप्यमान मुखमण्डल भगवान् शङ्कर के सौन्दर्य का भी अतिक्रमण कर जाता है। अमरत्व को प्राप्त हुए आपके चरणों का सदा वन्दन करते हैं।

☞ 10(अ) हे करुणा से युक्त, तीनों लोकों के मानवों के स्वामी! तेरी भक्ति मनुष्यों पर सदैव अनुकम्पा करती है। यही मनुष्यों के लिए उपयुक्त है, क्योंकि यही उन्हें परमपद तक ले जाती है।

☞ 10(आ) हे करुणा से युक्त तीनों लोकों की जननी! तेरी भक्ति मनुष्यों पर सदैव अनुकम्पा करती है। यही मनुष्यों के लिए उपयुक्त है, क्योंकि यही उन्हें परमपद तक ले जाती है।

☞ 11(अ) हे पर्वतराज की पुत्री के पति! अर्थात् हे शिव, मैं अनेक कष्टों से सन्तप्त हूँ। अब तुम ही मेरा सम्बल बनो। मुझ भयाक्रान्त को इस संसार सागर के बन्धन से पार ले चलो।

☞ 11(आ) हे पर्वतराज की पुत्री! अर्थात् हे पार्वती, मेरा मार्गदर्शन करो। मैं अनेक कष्टों से सन्तप्त हूँ। अब तुम ही मुझे अपनी शरण में ले लो।

☞ 12(अ) भगवान् शिव के प्रति हमारी श्रद्धा बनी रहे। एकमात्र उसके चरणों की पवित्र धूल ही हमारे द्वारा पूजी जाती रहे। आपके पास काँपते हुए शत्रुओं को नष्ट करने की अद्भुत शक्ति है।

☞ 12(आ) शिवा अर्थात् पार्वती को प्रणाम, जिसके पवित्र चरणों की आराधना कवियों द्वारा की जानी चाहिए। आप ही हैं जो काँपते हुए शत्रुओं को नष्ट करने की अत्यधिक शक्ति को धारण किए हुए हैं।

☞ 13(अ) आप तीनों लोकों में उन पराक्रमियों के सर्वोच्च देवता हैं, जो अपने आप को विषम परिस्थितियों में नियोजित करते हैं(जिनकी दृष्टि प्रकम्पित धनुष-सी कौंधती है)

☞ 13(आ) इन तीनों लोकों में आप उन स्त्रियों की सर्वोच्च देवता हैं, जिनकी दृष्टि थरथराते हुए धनुष के समान चमकती हुई पुरुषों को भयभीत करती है।

☞ 14(अ) हे मृड! अर्थात् हे त्रिनेत्र शिव! आप परमानन्द की आकाङ्क्षा रखने वालों को आकर्षक और अविनाशी देह प्रदान करने में समर्थ हैं।

☞ 14(आ) हे मृडानी! अर्थात् हे त्रिनेत्रा पार्वती ! आप परमानन्द के आकांक्षियों को आकर्षक और अविनाशी देह प्रदान करने में समर्थ हैं। आप की सुरक्षा के आकाङ्क्षी हैं।

☞ 15(अ) हे गौरीपति! अर्थात् हे शिव! विपत्तियों के झुंड से त्रस्त मनुष्यों को भ्रम मुक्त करने में आपके अतिरिक्त और कौन समर्थ हैं।

☞ 15(आ) वे गौरी अर्थात् पार्वती की शरण में हैं, जो दुर्भाग्य की अधिकता के कारण अत्यधिक कष्ट का अनुभव करते हैं। आपको छोड़कर उन्हें इस प्रकार के भ्रम से बचाने में कौन समर्थ हैं।

☞ 16(अ) हे शर्व! अर्थात् हे शिव! आपके भक्तों को सब शक्तियों को अतिशायी करने वाली, अपने आप को पूर्ण रूप से समर्पित करने की शक्ति प्राप्त होती है। हे निर्माता! आप हम पर कृपा करो, हमें तत्काल आवागमन के चक्र से मुक्त करो।

☞ 16(आ) हे शर्वाणी! अर्थात् हे पार्वती! आपके भक्त ऐसे लोक में पहुँचते हैं , जो सबका अतिक्रमण करता है अर्थात् सबसे श्रेष्ठ है। हे माता! आप हम पर कृपा करो, हमें तत्काल आवागमन के चक्र से मुक्त करो।

☞ 17(अ) हम उनके चरणों में झुकते /नमन करते हैं जिनकी गणपति के प्रति प्रगाढ़ प्रीति है, जिनका विकराल रूप सभी को विस्मित करने वाला है, जिनकी नेत्र ज्वाला ने कामदेव को भस्म कर दिया था।

☞ 17(आ) हम उनके चरणों में झुकते हैं जिनके हृदय में गणपति के प्रति अत्यधिक स्नेह भरा पड़ा है, जिनका सौन्दर्य हर किसी को आकर्षित करता है करता है तथा जिनकी दृष्टि स्नेह जगाती है।

☞ 18 हे परमेश्वर! हे निरामय (निष्कलङ्क) ! मुझ राम द्वारा आपके साथ उमा (पार्वती) की भी स्तुति की जाती है। हे करुणानिधान! उसे सुनकर मेरे इस प्रयास को फलीभूत कीजिए।

☞ 19 जो भक्तिभाव से तन्मय होकर गौरीशङ्कर के इस स्तोत्र का पाठ करते हैं, उमा-माहेश्वर के प्रसाद से उनकी समस्त मनोकामनाएँ फलीभूत हों! इति गौरीश्वर स्तोत्रम् !

☞ 20 जिनके मस्तक पर चन्द्रमा की शीतल किरणें शोभायमान हो रही हैं, उनका प्रशस्तिगान करने की योग्यता मुझमें कहाँ है परन्तु हे अग्नि के नेत्र से युक्त! अर्थात् शिव! आपकी भक्ति ही हमारी मूढ़ता को नष्ट कर देती है।

☞ 21-22. विचित्र चारित्रिक गुणों से युक्त ईश्वर की भक्ति से पूर्ण राजानक लक्ष्मणचन्द्र जैसे अद्भुत पुरुष आज भी विद्यमान हैं जिन्होंने पूर्वजन्म के पापों से मुक्त करने वाली केदारनाथ की तीर्थ यात्रा के उपरान्त यह प्रतिज्ञा की कि आज से समस्त स्त्रियाँ मेरे लिए बहन समान होंगी।

☞ 23. यह कितने आश्चर्य की बात है कि युद्ध में वह अदम्य वीर योद्धाओं के आक्रमण से सुरक्षित था क्योंकि उसे धनुर्धारियों में अग्रगण्य कामदेव के द्वारा भी वश में नहीं किया जा सकता था।

☞ 24-25. जिन वर्तमान शासकों की आज्ञाओं का उनके विरोधियों द्वारा पराक्रमहीन समझने के कारण सम्मान नहीं किया जाता और वे वहाँ के निवासियों की पत्नियों के साथ हठपूर्वक सङ्गम को ही नगर पर अधिकार/ प्रभुत्व की सफलता समझते हैं। ऐसे में युवावस्था, सुन्दर आकार, उदारता, नगर पर एकछत्र आधिपत्य, बहुत से हितसाधकों के होने के उपरान्त भी यदि मन दूसरों की स्त्रियों से विमुख है, तो फिर कौन-सा तप है जिसे साधा नहीं जा सकता।

☞ 26. बड़ी ही निर्मल बुद्धि से युक्त राजानक (लक्ष्मणचन्द्र) के तलवार चलाने में अत्यन्त प्रवीण हाथ दूसरों की पत्नियों के स्तनमर्दन का निन्दित कार्य नहीं करते थे।

☞ 27. उसके देश में सिद्ध का पुत्र मन्युक नाम का प्रसिद्ध व्यापारी रहता था। छिन्ना उसकी माता का नाम था जिसकी महेश के प्रति अविच्छिन्न भक्ति थी और जीवन सात्विकता से पूर्ण था।

☞ 28. जिसका अविभक्त वित्त वाला, पवित्र कार्य के प्रति एकनिष्ठ और समस्त अतिथियों के पूजन के लिए व्यग्र रहने वाला आहुक नाम का छोटा भाई था। गुल्हा नाम की उसकी अनिन्दिता पत्नी थी।

☞ 29. भक्ति के उद्यान में मधुमक्खी की भाँति उसने इस पुरी में अपने भाई के साथ त्रिपुरान्तक (भगवान् शिव) के द्वार पर गङ्गा और यमुना की मूर्तियों का निर्माण करके मण्डप सहित मन्दिर का निर्माण किया।

☞ 30. उन बेचारे दुःखी व्यापारियों को किस श्रेणी में गिना जाए जो अपने सारे धन को गर्भ की थैली में छिपाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटक रहे हैं। सचमुच मन्युक नाम का वह (पुरुष) धन्य है, क्योंकि उसने मायारूपी समुद्र को पार कर लिया है। अपने धन को सर्वोच्च ज्ञान के लिए समर्पित करता हूँ, जो उसके हृदय में प्रत्यारोपित हुआ है, जो श्रीकण्ठ के साथ जुड़ा हुआ है, यही नौका उसे भवसागर से पार ले जाएगी।

☞ 31. देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुओं की भक्ति से युक्त, उदारता का भण्डार, गुणीजनों का प्रिय और दाता आसुक का पुत्र रल्हण नाम का ब्राह्मण सुशर्मपुर में रहता था।

☞ 32. ज्योतिषियों में प्रधान उसने नवग्राम में अपनी एक बाह (भूमिमाप) भूमि में से शिव के लिए दो द्रुण धान्य के योग्य भूमि दी।

☞ 33. यहाँ के ही निवासी गोविन्द ब्राह्मण के पुत्र प्रज्ञावान् गणेश्वर ने नवग्राम में ही आधा हल भूमि शिव मन्दिर के लिए दान की।

☞ 34. इसके उपरान्त देपिक और मल्हिका के पुत्र अत्यधिक वैभवशाली जीवक नाम के वणिक् ने सामने की भूमि शिव के प्राङ्गण के लिए समर्पित की।

☞ 35. जब तक समस्त लोकों का यह दिव्य स्वामी कोमल किरणों के साथ स्वर्ग के अथाह प्रसार में गोते लगाता है, तब तक मन्युक और आहुक द्वारा अन्य समस्त अनुदानों के साथ निर्मित यह शिवालय अस्तित्व में रहे!

☞ 36. उदारबुद्धि वाला आसिक का नायक नाम का पुत्र तो निर्माण करने वाले (राजमिस्त्रियों) का प्रमुख था। वह श्रीसुशर्मपुर से इस गाँव में आया। उसी प्रकार सम्मन का पुत्र ठोढुक भी श्रीसुशर्मपुर से ही यहाँ आया।

☞ 37. इन दोनों ने एक-दूसरे के साथ मण्डपसहित शिवपुरी को घड़ा और सुन्दर बनाया। सामु की पद्धति से निर्मित गणों की अनेकानेक मूर्तियों की दमक इसकी शोभा बढ़ाती है।

☞ 38. पुण्यशाली शृङ्गारा और भृङ्गक के पुत्र कवियों में श्रेष्ठ राम नाम के कवि ने इस प्रशस्ति की रचना की है।

☞ 39. राजा जयचन्द्र के राज्यकाल में ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को अस्सीवें वर्ष में रविवार के दिन राम के द्वारा यह प्रशस्ति लिखी गई।

ॐ नम शिवायः
शककालगताब्दः - -- -- 6

3 शिलालेख: 1 (विशेष-सन्दर्भ)

पहला शिलालेख गणों के दोनों स्वामियों शिव और पार्वती की स्तुति के साथ प्रारम्भ होता है। इसके उपरान्त पहले श्लोक में प्रस्तुत शिलालेख में प्रयुक्त श्लोकों के माध्यम से शिव और पार्वती के भक्तिपूर्वक आह्वान की बात की गई है। दूसरे श्लोक से लेकर सत्रहवें श्लोक पर्यन्त स्तुतिपरक अंश हैं। वे सारे श्लोक पार्वती और शिव को समर्पित हैं। प्रत्येक श्लोक द्व्यर्थक है। प्रत्येक श्लोक में एक अर्थ शिव को समर्पित है और दूसरा शक्ति अर्थात् पार्वती को। कुल मिलाकर ये मङ्गलाचरणात्मक श्लोक शिव और पार्वती के प्रति भक्तिभाव से गुम्फित हैं तथा इनमें विविध प्रतीकात्मक निरूपणों के माध्यम से उनके पौराणिक महत्त्व को भी प्रतिपादित किया गया हैं। प्रारम्भ के सत्रह श्लोक द्व्यर्थक स्तुतिपरक ही हैं। इस प्रशस्ति में श्लोक 18 से श्लोक 20 तक के तीन श्लोक स्तुतिपरक श्लोकों के उपसंहार रूप में प्रस्तुत किए गये हैं। यद्यपि उन्नीसवें श्लोक में ही गौरीश्वर स्तोत्र की विधिवत् समाप्ति हो जाती है, जिसका उल्लेख वहाँ किया भी गया है।

इस प्रशस्ति में 39 श्लोक हैं और मन्दिर का निर्माण करवाने वाले, मन्दिर का निर्माण करने वाले, क्षेत्रीय व्यवस्थापक एवं संरक्षक और प्रशस्तिकार के परिचय के साथ मुख्य संरक्षक के नामोल्लेख के लिए कुल 19 श्लोक ही शेष बचते हैं।

शिलालेखों के सन्दर्भ में यह स्पष्ट है कि इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में राजाओं से होता ही है। ऐसे राजवंशीय अभिलेखों में नगरों, राजाओं की विशिष्टताओं, उनके विजय-प्रयाणों और दानादि से सम्बन्धित होते हैं। कीरग्राम-बैजनाथ के इस अभिलेख में भी त्रिगर्त के तत्कालीन अधिपति राजा जयचन्द्र का उल्लेख अन्तिम श्लोक में किया गया है।

कीरग्राम की सुरक्षा में त्रिगर्त के अधिपति द्वारा नियुक्त लक्ष्मणचन्द्र का विस्तृत उल्लेख किया गया है। लक्ष्मणचन्द्र द्वारा पूर्व जन्म के पापों से मुक्ति प्रदान करने के लिए केदारनाथ की यात्रा की गई है। समस्त स्त्रियों को बहन मानने की प्रतिबद्धता का उल्लेख है। अन्य राजाओं की तुलना में चारित्रिक गुणों, पराक्रम एवं प्रशासनिक कौशल के कारण लक्ष्मणचन्द्र को श्रेष्ठ बताया गया है। (सन्दर्भ श्लोक 21-26)

यह छः श्लोक राजानक लक्ष्मणचन्द्र के परिचय को प्रकट करने में पर्याप्त हैं। मन्दिर निर्माण आदि धार्मिक कृत्यों के साथ-साथ दूरस्थित तीर्थस्थलों की धार्मिक यात्राओं का भी प्रचलन था, इसका भी स्पष्टीकरण होता है। लक्ष्मणचन्द्र की वीरता और उसकी चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन अन्य चरित्रहीन राजाओं से तुलना करते हुए प्रस्तुत किया गया है। अन्य राजाओं के चारित्रिक पतन को उनके राज्य निवासियों की पत्नियों से उनके हठपूर्वक सङ्गम का उल्लेख करके प्रस्तुत किया गया है। राजा को वास्तविक वीर कहा गया है तथा उसकी परस्त्रीगमन से विमुखता को प्रमुखता दी गयी है। यह आक्रान्ताओं के आगमन का समय था और उस कालखण्ड में युद्धों की अधिकता के बीच स्त्रियाँ बाह्य आक्रमणों के कारण सुरक्षित नहीं थीं।

राजानक पर कीरग्राम की सामान्य सुरक्षा-व्यवस्था का दायित्व ही नहीं था अपितु वह वीर योद्धा भी था और शत्रुओं में उसका भय व्याप्त था। वह मात्र कीरग्राम की सुरक्षा का ही दायित्व नहीं सँभालता रहा होगा अपितु त्रिगर्त के अधिपति द्वारा उसके अधिकार क्षेत्र में

आस-पास का क्षेत्र भी दिया गया होगा। उसे एक सामान्य संरक्षक से अधिक प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया गया है।

पहले शिलालेख के 27वें श्लोक से मन्दिर निर्माण के सन्दर्भ में वर्णन का आरम्भ होता है। इस तरह के महत् आयोजनों में अर्थ की भूमिका सर्वोपरि होती है। इस सन्दर्भ में शिलालेख में विशद् वर्णन है। वणिक् 'सिद्ध' और 'छिन्ना' जो शिव के प्रति भक्ति से युक्त थे उनके पुत्र 'मन्युक' तथा व्यापार में उसके हिस्सेदार और धर्म के कार्यों में अपना अवदान देने वाले उसके छोटे भाई 'आहुक' ने ही गङ्गा और यमुना की मूर्तियों से युक्त द्वार तथा मण्डप से युक्त इस मन्दिर का निर्माण करवाया। 'मन्युक' एक प्रसिद्ध व्यापारी था तथा उसकी पत्नी का नाम 'गुल्हा' था, जो पातिव्रत्य का पालन करने वाली थी। 'मन्युक' और उसके भाई 'आहुक' का व्यापार किस चीज का था, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। (सन्दर्भ श्लोक 27-30)

30वें श्लोक से मन्दिर के दान की प्रशस्तियों का प्रारम्भ होता है। यहाँ भी प्रथम उल्लेख 'मन्युक' का ही है। उसे धन-लिप्सा में डूबे समस्त व्यापारियों में श्रेष्ठ बताया गया है। मन्दिर निर्माण में धन लगाने से उसके भवसागर से पार होने की बात भी कही गई है। इससे स्पष्ट है कि दानादि कार्यों का धार्मिक रूप से बड़ा महत्त्व था और मन्दिर निर्माण आदि कार्यों से स्वर्ग प्राप्ति की धारणा भी बनी हुई थी।

सुशर्मपुर के रहने वाले 'रल्हण' नाम के ब्राह्मण जिसे प्रख्यात ज्योतिषी भी बताया गया है उसने अपनी एक 'वहमान' (वाह) परिमाप की भूमि में से दो द्रुण धान्य की उपज की भूमि नवग्राम नामक ग्राम में शिव के नाम पर मन्दिर को प्रदान की। एक वाह परिमाप चार द्रुण के बराबर बताया गया है।[3] चार द्रुण में से दो द्रुण भूमि का दान आधे के बराबर है। क्षेत्रीय परिमाप के अनुसार एक द्रुण में आठ 'ठीम्बी' (16 पथ) धान होता है। 'रल्हण', 'आसुक' का पुत्र था और प्रशस्ति में 'आसुक' को दाता कहा गया है। दाता से उसकी दान-प्रियता का बोध होता है। 'रल्हण' सुशर्मपुर अर्थात् त्रिगर्त राज्य के प्रमुख नगर, आधुनिक काँगड़ा में रहता था या हो सकता है वह इस राज्य के अन्तर्गत नवग्राम में ही निवास करता हो। यह नवग्राम बैजनाथ के पास अल्-हिलाल छावनी के निकट ही है और उसे आज 'नौर' नाम से जाना जाता है। यहाँ के एक अन्य निवासी गोविन्द ब्राह्मण का पुत्र गणेश्वर द्वारा भी नवग्राम (नौर) गाँव में ही आधा हल माप की भूमि शिव के देवालय हेतु प्रदान की गयी। एक दिन में एक हल से जोती जा सकने वाली भूमि को एक हल कहें तो आधे दिन में जोती जा सकले वाली भूमि आधा हल हुई। सम्भवतः एक हल का निर्धारण भी बीजों की मात्रा के आधार पर ही किया जाता रहा होगा। इसके साथ ही मन्दिर प्राङ्गण के लिए 'देपिक' और 'मल्हिका' के पुत्र 'जीवक' ने मन्दिर के सामने की भूमि दान की। जीवक भी वणिक्वर्ग से सम्बन्ध रखता था। (सन्दर्भ श्लोक 31-34)

पैंतीसवें श्लोक में मन्दिर के अस्तित्व की कामना के साथ मन्युक और आहुक के अनुदानों के साथ अन्य अनुदानों के उल्लेख से स्पष्ट है कि लोगों के बीच धर्म के प्रति आस्था व्यापक स्तर पर थी और मन्दिर निर्माण आदि आयोजनों में दान आदि कृत्यों में वे बढ़-चढ़ कर भाग लेने लगे थे।

---

[3] *A Holy Jyotirlinga Vaidyanatha*, Foot Note, Page 90

इस निर्माण में जिन दो प्रमुख वास्तुकारों के नाम उल्लिखित हैं, उनमें से एक है 'आसिक' का पुत्र 'नायक' और दूसरा है 'सम्मन' का पुत्र 'ठोढुक'। इन दोनों को सुशर्मपुर से यहाँ आया हुआ बताया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि त्रिगर्त क्षेत्र में भी उत्कृष्ट वास्तुकारों का अभाव नहीं था। क्षेत्रीय वास्तुकारों के निर्देशन में इस निर्माण का पूर्ण होना, वास्तव में एक उपलब्धि है। 'शामु' की पद्धति से मूर्तियों के निर्माण का उल्लेख सम्भवतः वास्तुशिल्प की किसी विशेष या अवान्तर पद्धति की ओर सङ्केत करता है। (सन्दर्भ श्लोक 36-37)

इक्कीसवें श्लोक से लेकर सैंतीसवें श्लोक तक मन्दिर निर्माण के विवरण को ही प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम दो श्लोक प्रशस्तिकार और मन्दिर निर्माणकाल को प्रस्तुत करते हैं। प्रशस्ति के अन्तिम श्लोक में इस प्रशस्ति का काल ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि अस्सीवें वर्ष में रविवार के दिन बताया गया है। यहीं पर जयचन्द्र के राज्य का भी उल्लेख है अतः स्पष्ट है कि इस देवालय के निर्माण के समय जयचन्द्र ही त्रिगर्त नरेश थे।

4 शिलालेख: 2 (मूल)

(बुह्लर द्वारा सम्पादित द्वितीय शिलालेख)[4]

ओं स्व(स्ति ओं) नमश्श(र्वा)य

(आशास्यं वो गजास्यो) वितरतु हरता(त्तार)कारिर्विकारं
नन्दी सानन्द(नो)यं भवतु स (च) महाकालशूलस्य (ध)र्ता।
- --ी ना- --(रक्ष)यतु कु(रुतां) वीरभद्रोऽपि (भ)द्रं
सर्वे वोखर्वगर्वा विदधतु कुशलं किङ्कराश्शङ्करस्य॥ 1॥

स पातु वो (म)हादेवो -- - भक्तिचुम्बितः।
आत्मानं मु(हु)रीक्षन्ते यत्पादनखदर्पणे॥ 2॥

काष्ठोद्दीपनक(र्म)ठा जगति या या निर्निमेषेक्षणैस्सत्पक्षै-
रुपजीव्यते द्विजजनं या विभ्रति शस्य(ते)।
देवस्याहुतिलम्पटस्य परमा पुष्टिर्यतो (जा)यते
ताभिर्मूर्तिभिरष्टभिर्भवतु वा भूत्यै भवानी वि(भुः)॥ 3॥

एतेनै(व) शरत्वमभ्युपगतं प्लोषाय पूर्वं पुरां
सम्प्राप्त(ा) धनुषश् श्रियं तनुरियं सम्प्रत्यमुष्यैव च।
व्यानम्रे हसतीव य(त्सु)ररिपावित्थं मुहुर्विस्मयात्
भस्मस्मेरमुपास्महे स्मरजितः पादद्वयं (त)द्वयम्॥ 4॥

यदप्यचेतनत्वा वक्तुमशक्तस्सुरालयस्तदपि॥
अथ केन (कृ)तोऽहमिति प्रशस्तिपृथुजिह्वया वदति॥ 5॥

ज(ा)लन्धराधिराजो जयति गुणानां निधिर्जयचन्द्रः।

[4] *A Holy Jyotirlinga Vaidyanatha*, Page 91--94

ईदृशि यस्य राज्ये देवायतनानि जातानि ॥ 6 ॥

वित्तं शिवे प्रयुक्तं येषां कालेन भवति कोटिगुणम् ।
ग(ण्यास्त ए)व वणिजश्शेषैः किं स्तोकवा(र्धु)षिकैः ॥ 7 ॥

अनेन वक्ष्यमाणेन सुकृतेन महानयौ ।
गण्यौ गणेषु भ्रातरौ भूयास्तां मन्युकाहुकौ ॥ 8 ॥

तौ भ्रातरौ कृतज्ञौ याभ्यां शमदम(प)योधरयुतायाः ।
शिवभक्तिजनन्या (अ)पि रसस्समास्वादि ???? र्थम् ॥ 9 ॥

शैलस्याङ्कचलित्वा रुचिरनववयाः शोभनीयं सहेलं
कुक्ष्या कन्येव यत्र स्फुरदुरलहरी कन्दुकाबिन्दुकाख्या ।
कीरग्रामोऽभिरामो गुणगणनिलयो वर्ततेऽधित्रिगर्तं
सोयं राजानकेन प्रबलभुजयु(जा रक्षि)तो लक्ष्मणेन ॥ 10 ॥

अतुलकुलवकुलपा(दप)कन्दः परिपन्थिभिः पुरास्कन्दः ।
राजानकोऽत्र कन्दः प्रथममभू(द्यु)र्यमस्कन्दः ॥ 11 ॥

बुद्धो विशुद्धबुद्धिस्तस्य सुतोऽजनयदुद्धुरं तनयम् ।
विग्रह इति कृतविरहश् शत्रुवधूनां ततो जज्ञे ॥ 12 ॥

विग्रहविग्रहजातो ब्रह्मेति बभूव भूवधूदयितः ।
विग्रहनिग्रहकरणे शक्तिर्यस्य(ाभ)वद्रिपुषु ॥ 13 ॥

हस्तालम्बकमुन्नताहिलुठतामाराधितत्र्यम्बकम्
शत्रुश्रीपरिचुम्बकं परतिमिस्वीकारचिन्तान्धकम् ।
क्रान्तग्रामकदम्बकं नृपतिभिस्सद्बन्धु(कौ)टुम्बकम्
(स्वा)कारप्रतिबिम्बकं स च कृती लेभे सुतं डोम्बकम् ॥ 14 ॥

नारीमोहनयौवनं नवनवत्यागोर्मिभिः(पा)वनम् ।
भूभर्तुः कृतसेवनं निजभुवस्सम्यक्प्रकृप्तावनम् ॥
(उद्दा)मद्विपदालयीकृतवनं युद्धोग्रसिंहस्वनं
पुत्रं सोऽपि समाससाद भुवनं शम्भौ वृहत्सावनम् ॥ 15 ॥

गुणमणिनिकुरुम्बरोहणं प्रवहणमापदगाधवारिधौ ।
कृतसुभटशिरोऽधिरोहणं (स)मजनयत्तनयं स कल्हणम् ॥ 16 ॥

(जा)लन्धराधीश्वरपाद निश्छद्मभक्तिः प्रचुरात्मशक्तिः ।
बलोल्वणो विल्हणनामधेयस्तस्यात्मजोऽजायत सद्विधेयः ॥ 17 ॥

तनयायां सनयस्य त्रिगर्तभूभ(र्तृ)हृदयचन्द्रस्य ।

स च रामलक्ष्मणाख्यौ लक्षणिकायां सुतौ लेभे ॥ 18 ॥

ज्येष्ठे गुणैर्गरिष्ठे बिम्बौष्ठीभिस्समं द्युपुरि गोष्ठीम् ।
अधितिष्ठति निष्ठुरधी(स्तस्य)कनिष्ठोऽत्र सुप्रतिष्ठोऽभूत् ॥ 19 ॥

त्रिगर्तनृपतीनां या पादपद्मोपजीविभिः ।
कन्दादि(भिरा)सन्दारि सन्दारिभिरभुञ्जत ॥ 20 ॥

परिपालितवास्तव्यस्तव्यनिर्मलकर्मणा ।
साधुना साधुना भूमिर्लक्ष्मणेनोपभुज्यते ॥ 21 ॥

यस्य प्रेयस्य भवन्मयतल्ले(त्य)तुलरूपभृद्रमणी ।
तस्मिन्कीरग्रामं लक्ष्मणचन्द्रेऽनुपालयति ॥ 22 ॥

सिद्धाख्यवणिक्पुत्रौ धर्मप्रवणाविह स्थितौ कृतिनौ ।
(ज्ये)ष्ठो मन्युकनामा कनिष्ठमप्याहुकं प्राहुः ॥ 23 ॥

भवतरुकुठारधारा प्रविषमतमजन्मभरुमरुल्ल(ह)री ।
प्ररुरोह मोह(हं)त्री (मन)सि तयो(श् शा)म्भवी भक्तिः ॥ 24 ॥

ताभ्यां शिवलिङ्गमिदं निरालयं वीक्ष्य वैद्यनाथाख्यम् ।
पुर्या सहितं विहितं पुरतोऽस्य च मण्डपो रचितः ॥ 25 ॥

इति मन्यु(का)हुकाभ्यामुदरे स्थित्वा पुरा किलैकत्र ।
पुनरुदरसम्प्रवेशप्रतिषेधविधि(स्स) सह विहितः ॥ 26 ॥

यद्यपि पितेव कुरुते करुणां शम्भुस्तथापि पितरधिकः ।
जन्मनिमित्तं हि पिता शशिमौलिरजन्मनो हेतुः । 27 ॥

शाहिलपाहिल(क)ाहिलसिद्धास्स्वर्लोकगामिनस्सन्तु ।
पूर्वे पुरुषाः क्रमशश्चत्वारो मन्युकाहुकयोः ॥ 28 ॥

किम्बहुना(प्यु)र्ध्वेषापुरुषाणामे(व) विंशतिर्यातु ।
(सुकृ)तेनानेन दिवं स्वयं च परमास्तु गतिरनयोः ॥ 29 ॥

राजानकेन चास्मै लक्ष्मणचन्द्रेण वैद्यनाथाय ।
मण्डपिकोत्पत्तिधनाद्द(त्ताष्ष)द्वत्यहं द्रम्माः ॥ 30 ॥

ग्रामात्प्रलम्बना(न्तो) मात्रा राजानकस्य लक्षणया ।
एकहलवाहनीया दत्ता भूमिर्महेशाय ॥ 31 ॥

लक्ष्मणस्य सुकृतं सुकृती यः पालयिष्यति तदन्वयधर्ता ।
तस्य पुण्यमुपयातु विवृद्धिं यो हरिष्यति स गच्छतु चाधः ॥ 32 ॥

तैलोत्पीडनयन्त्रं कीरग्रामेऽस्ति मन्युकाहुकयोः
ताभ्यां तदपि शिवाय प्रदीपनिष्पत्तये दत्तम्॥ 33॥

एका च पण्यशाला ताभ्यां स्वीया शिवस्य भोगार्थम्।
भूमिश्च हलचतुष्टयं योग्या दत्ता नवग्रामात्॥ 34॥

इति येन येन यद्यत्सुकृतं विहितं शिवं समुद्दिश्य।
इह तस्य तस्य तत्तत्तिष्ठतु यावद्धरित्रीयम्॥ 35॥

यस्याविस्मृत(ज)ननीस्तन्यसमास्वादनस्य वदनाङ्गे।
विशुद्धकवित्वफला सरस्वती भगवती न्यवसत्॥ 36॥

श्रीभृङ्गकस्य स सुत(ः)काश्म(ी)रनृपप्रमातुरनघस्य।
प्रथमवयास्सर(लार्था) व्यधत्त रामः प्रशस्तिमिमा(म्)॥ 37॥

चबेढक्षेत्रात् हर---------वक्तण(दे)वाद(ग्र)भूमि(च्छ?)
गुहकेन य(?)शसि भदो(?)ना।

शककालगताब्दाः 7 (26)

5 शिलालेख: 2 (भावानुवाद)

1. गणपति आपकी मनोकामनाएँ पूर्ण करें। तारक (तारकासुर) के शत्रु समस्त विकारों को दूर करें। नन्दी आपको हर्षित करें और वह जो महाकाल के त्रिशूल को धारण करने वाला है.....रक्षा करे! वीरभद्र भी कल्याणकारक हों! भगवान् शङ्कर के समस्त गण आप सब के लिए कल्याणकारी हों!

2. वह महादेव आपकी रक्षा करें! ---..... भक्तिपूर्वक चुम्बित जिनके पैरों के नखों के दर्पण में अपना ही प्रतिबिम्ब बार-बार देखते हैं अर्थात् सिर झुकाकर बार-बार प्रणाम करते हैं।

3. भवानीपति महादेव आपको आठ शरीरों के माध्यम से खुशी प्रदान करें। जो काष्ठोद्दीपन में सक्रिय हैं, जो संसार के द्वारों को जगमगाने में लगे हैं, जो मजबूत पंख वाली मछली के समान कभी न झपकने वाली सुन्दर आँखों से युक्त हैं, जिन पर देवता निवास करते हैं, जिनके अनुयायी सदाचार से युक्त हैं। द्विजों के द्विजत्व को बचाये रखने के लिए जो प्रशंसित हैं, जो पक्षियों की उड़ान के लिए स्तुत्य है, जिनके द्वारा हव्य से प्रसन्न देवता श्रेष्ठतम उत्थान को प्राप्त होते हैं!

4.जो पूर्व के नगरों को जलाने के लिए एक तीर बनाने के लिए सहमत हो गया। (राक्षसों के) और उसका शरीर धनुष की तरह सुन्दरता से युक्त (प्रतिबिम्बित) है। इस प्रकार बार-बार कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाले के दोनों चरणों की हम विस्मित होकर पूजा करते हैं, जो राख से देदीप्यमान हैं तथा जो देवताओं के पराजित शत्रुओं का उपहास उड़ाते हैं।

5. यद्यपि अचेतन होने के कारण मन्दिर मूक है तथापि इस प्रशस्ति की विवरण युक्त जिह्वा से अपने रचियता की प्रशस्ति का गुणगान करता है।

6. गुणों के भण्डार जालन्धर के महाराज जयचन्द्र की जय हो, जो उनके राज्य में इस तरह के देवायतनों (मन्दिरों) का निर्माण हुआ।

7. जिनका धन शिव के कार्य में प्रयुक्त है, उनका वह धन समय के साथ करोड़ गुणा हो जाता है। अपने धन को शिव के कार्य में प्रयुक्त करने वाले ही वास्तविक वणिक् हैं। ऐसे में अन्य (वणिकों) का क्या उपयोग, वे तो मात्र तुच्छ साहूकार हैं।

8. अपने सद्कर्मों के कारण और उच्च विवेक से महानता को प्राप्त मन्युक और आहुक नाम के गुणी गणों में गिने जाने वाले दो भाई हुए।

9. वे दोनों भाई कृतज्ञ हैं, जो शान्ति और आत्म-विजय से भरपूर शिव की भक्ति रूपी अपनी दूसरी माँ के विश्वास के दूध के स्वाद से भी धन्य हुए।

10. त्रिगर्त में कीरग्राम नाम का एक बड़ा ही मनोहारी गाँव है। यह अनेकानेक विशेषताओं से युक्त है। जहाँ पर कन्दुकाबिन्दुका नाम की नदी पर्वत की गोदी से कुलाँचें भरती हुई चमचमाती बड़ी-बड़ी लहरों के साथ उसी प्रकार से खेल-कूद में लग जाती है जैसे कोई खिलते यौवन से आभायुक्त युवती हो (जो खिलखिलाती हुई अपनी संरक्षिका की गोद से कूद रही हो)। यह गाँव शक्तिशाली राजानक लक्ष्मणचन्द्र द्वारा सुरक्षित था।

11 . प्रारम्भ में यहाँ बकुल-वृक्ष की जड़ समान अतुलनीय कुल का राजा कन्द निवास करता था, जो अपने शत्रुओं का नाश करने वाला, उपनगरों का विजेता तथा पराक्रमी स्कन्दों से युक्त सर्वप्रथम यहाँ के राजानक पद को सुशोभित करने वाला था।

12. विशुद्ध बुद्धि से युक्त उसका पुत्र बुद्ध हुआ। उस बुद्ध का विग्रह नाम का अतिश्रेष्ठ पुत्र हुआ जिसने अपने नाम के अनुरूप शत्रुओं से उनकी पत्नियों का विग्रह कर दिया।

13. इसके उपरान्त विग्रह का पुत्र ब्रह्म इस क्षेत्र का अधिपति बना जिसमें अपने शत्रुओं को दण्डित करने का सामर्थ्य था।

14. उस प्रसन्नचित्त मनुष्य (ब्रह्म) का डोम्बक नाम का एक पुत्र हुआ, जिसमें उसके पिता का स्वभाव ही प्रतिबिम्बित होता था। त्र्यम्बक का सेवक होने के कारण उस ऊपर वाले (शिव) का हाथ ही उसका सहारा था। वह अपने शत्रुओं के भाग्यश्री का परिचुम्बन करने वाला था अर्थात् शत्रुओं के ऐश्वर्य का हरण करने वाला था। जो बड़े मनोयोग से शत्रुरूपी मछलियों को पकड़ने में लगा हुआ था। अपने सम्मानित एवं योग्य जनों के कुटुम्ब का नेतृत्व करते हुए कई गाँवों के समूह को उसने अपने अधीन कर लिया था।

15. उसे भी भुवन नाम का पुत्र प्राप्त हुआ जिसकी युवावस्था ने स्त्रियों को प्रभावित किया, जिसने दान की तात्कालिक धाराओं के माध्यम से अपने राजा की सेवा की और अपने देश की रक्षा की, जिसने अपने अभिमानी शत्रुओं को वनों में खदेड़ दिया, युद्ध में जिसकी सिंह गर्जन भयानक थी तथा जिसने शम्भु के लिए बहुत बड़े बलिदान दिए।

16. उसका कल्हण नाम का एक पुत्र हुआ, जिसके गुण बहुमूल्य मणियों की आभा से युक्त थे। वह दुर्भाग्य के गम्भीर समुद्र में नाव की भाँति था। वह महान् योद्धाओं के सिरों को रौंद कर निकल जाता था।

17. उसका एक श्रेष्ठ और आज्ञाकारी पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम विल्हण था। वह जालन्धर के महान् अधिपति के चरण-कमलों के प्रति निश्छल भक्ति से पूर्ण था, अत्यधिक आत्म-शक्ति का स्वामी था और अपनी शक्ति के बल पर बड़ा ही भयावह था।

18. राजनीति के महारथी त्रिगर्त के राजा हृदयचन्द्र की पुत्री लक्षणिका के राम और लक्ष्मण नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए।

19. इनमें से ज्येष्ठ अपने गुणों की गरिष्ठता के कारण पूजनीय, इस स्वर्ग के नगर में रहता हुआ, बिम्बफल के समान (रक्तवर्णी) ओठों वाली स्त्रियों की सङ्गति में डूबा रहता है , उसका दृढ़बुद्धि वाला अनुज वहाँ अधिष्ठित हुआ।

20-21. सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र जो कन्द और आसन्द के शत्रुओं को समाप्त करने वाले त्रिगर्त के राजाओं के चरणारविन्दों के अन्य सेवकों के अधीन था। सम्प्रति उस राज्य का उपभोग पुण्यात्मा लक्ष्मण कर रहा है और वह उस क्षेत्र के निवासियों की रक्षा में लगा हुआ है। उसके निर्मल कार्य प्रशंसा के योग्य हैं।

22-23. जिस समय लक्ष्मणचन्द्र जिसकी अद्वितीय सौन्दर्य से युक्त मयतल्ला नाम की प्रिय पत्नी थी, कीरग्राम की सुरक्षा में लगा हुआ था, उस समय यहाँ निवास करने वाले सिद्ध नाम के व्यापारी के दो धर्मनिष्ठ और प्रसन्नचित्त पुत्र हुए जिनमें से बड़े वाले का नाम मन्युक और छोटे वाले का नाम आहुक था।

24. उनके हृदय में शम्भु के प्रति अगाध भक्ति उत्पन्न हुई जो भ्रम को उसी प्रकार नष्ट करती है, जिस प्रकार कुल्हाड़ी का प्रहार सांसारिकता के वृक्ष को काट देता है और जिस प्रकार आँधी की लहरें बार-बार जन्म के भयावह समुद्र में ले जाती हैं।

25. वैद्यनाथ नाम के इस शिवलिङ्ग को निरालय (मन्दिर रहित) देखकर उन दोनों के द्वारा उस पर मन्दिर का निर्माण किया गया और उसके सामने एक मण्डप का निर्माण भी करवाया।

26-27. इस जन्म में, पहले एक ही गर्भ में रह चुके मन्युक और आहुक ने पुनः गर्भ में न आने की प्रतिज्ञा करते हुए घोषणा की कि शम्भु पिता की तरह दयालु होने पर भी वे पिता से बढ़कर हैं क्योंकि पिता तो जन्म के निमित्त कारण हैं परन्तु शशिमौलि (शम्भु) जन्मों से मुक्ति के कारण हैं।

28. शाहिल, पाहिल, काहिल और सिद्ध ये चारों ही क्रमशः मन्युक और आहुक के पूर्वज हैं। ये चारों क्रमशः स्वर्ग में प्रतिष्ठित हों।

29. संक्षेप में, उनके कुल के अन्य लगभग बीस पुरुषों के द्वारा भी इस कार्य में सहयोग प्रदान किया गया, जिन्हें इस धर्मनिष्ठ कार्य में योगदान के कारण दिव्य लोक की प्राप्ति होगी परन्तु मुख्य सहयोगियों के रूप में ये दो (मन्युक और आहुक) ही प्रतिष्ठित हैं।

30. राजानक लक्ष्मणचन्द्र द्वारा इस वैद्यनाथ के लिए व्यापारिक प्रतिष्ठान से एकत्रित होने वाले धन में से प्रतिदिन छः द्रम धन आवण्टित किया गया।

31. एक हल से जोती जाने वाली भूमि प्रलम्ब नाम के गाँव में राजानक की माता लक्षणा द्वारा महेश के निमित्त दान की गई।

32. लक्ष्मण का प्रत्येक धर्मनिष्ठ उत्तराधिकारी जो पवित्र भेंट की रक्षा करता है, उसके पुण्यों में अतिशय वृद्धि हो परन्तु उन वस्तुओं का हरण करने वाला अधोगति को प्राप्त हो!

33-34. एक तैलोत्पीडन यन्त्र (कोल्हू) भी मन्युक और आहुक द्वारा कीरग्राम में स्थापित हुआ जिसे उन्होंने शिव के दीपदान हेतु समर्पित किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक दुकान भी शिव की प्रसन्नता हेतु समर्पित की और चार हल उत्तम भूमि का अंश भी नवग्राम में दिया।

35. शिव के निमित्त जिस किसी ने इस प्रकार का जो भी दान दिया, उससे वे (दाता) तब तक लाभान्वित होते रहें, जब तक यह पृथ्वी है।

36-37. कश्मीर के राजा के श्रेष्ठ प्रमातृ भृङ्गक का पुत्र राम, जिसके मुखारविन्द में बड़े पवित्र कवित्व फल को प्रदान करने वाली भगवती सरस्वती निवास करे, जिसने अपनी माँ के दूध का स्वाद भूल जाने से पहले, अपनी युवावस्था के प्रारम्भ में सरल अर्थयुक्त इस स्तुति की रचना की।

चबेढ़ क्षेत्र से हर--क्षेत्र से वक्तृणदेव से श्रेष्ठभूमि में गुहक के द्वारा यह प्रशस्ति उकेरी गई। शककालगताब्दाः 7 (26)

6 शिलालेख: 2 (विशेष-सन्दर्भ)

दूसरे शिलालेख में भी परम्परा का अनुसरण करते हुए चार श्लोक मङ्गलाचरणात्मक हैं। पहले श्लोक में गणपति से मनोकामनाएँ पूर्ण करने की बात की गयी है तथा भगवान् शङ्कर, नन्दी, वीरभद्र और अन्य गणों से रक्षा एवं कल्याणार्थ विनती की गयी है। दूसरे और तीसरे श्लोक में भगवान् शिव की स्तुति है। चौथे श्लोक में विविध पौराणिक आख्यानों के आंशिक उल्लेख के साथ भगवान् शिव का वन्दन किया गया है।

पाँचवें श्लोक में प्रशस्ति के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए इसे अचेतन मन्दिर का गुणगान करने में समर्थ बताया है। वास्तव में ही यह दूसरी प्रशस्ति विविध तथ्यों को विस्तार के साथ हमारे सामने रखती है।

पहले और दूसरे शिलालेख में प्रमुख अन्तर पर ध्यान दें तो स्पष्ट होता है कि पहले शिलालेख में एक बार भी कीरग्राम पद का प्रयोग उपलब्ध नहीं होता, वहीं दूसरे शिलालेख में इसका प्रयोग तीन बार हुआ है। पहले शिलालेख में इसका प्रयोग नहीं होने के पीछे एक कारण तो पहले शिलालेख के लगभग आधे भाग का स्तुतिपरक होना है। इसके अल्प-विवरणात्मक होने पर भी इसमें अन्य अनेक तथ्यात्मक विवरण पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं। दूसरे शिलालेख में तीन विविध स्थलों पर कीरग्राम पद का प्रयोग हमें इस प्रकार प्राप्त होता है– "कीरग्रामोभिरामो..." श्लोक-10 (पङ्क्ति 10-11), "तस्मिन्कीरग्रामं..." श्लोक-22 (पङ्क्ति 21) तथा "कीरग्रामेऽस्ति..." श्लोक-33 (पङ्क्ति 29)। इससे स्पष्ट है कि मन्दिर निर्माण और प्रशस्ति-लेखन काल तक इस स्थान का नाम कीरग्राम ही था।

छठे श्लोक से अन्त तक इस प्रशस्ति में अनेक बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है। छठे श्लोक से आरम्भ होती इस प्रशस्ति में सबसे पहले महाराज जयचन्द्र की जयकार की गयी है। महाराज जयचन्द्र को जालन्धर का अधिपति बताया गया है। जालन्धर त्रिगर्त का ही पौराणिक नाम है। 'देवायतनानि जातानि' में बहुवचन का प्रयोग करके महाराज जयचन्द्र को अनेक मन्दिरों का निर्माण करने वाला भी कहा गया है। स्पष्ट है कि उस काल में मन्दिरों का निर्माण हुआ होगा जिनके निर्माण के पीछे जालन्धर अर्थात् त्रिगर्त के महाराजा की भूमिका

रही होगी। इन मन्दिरों के निर्माण में वणिक् वर्ग का अवदान भी अप्रतिम रूप से दृष्टिगत होता है। बैजनाथ के मन्दिर के निर्माण सन्दर्भ में तो यह पूर्णतः स्पष्ट है। (सन्दर्भ श्लोक 6-7)

इस प्रशस्ति में भी पहली प्रशस्ति के अनुरूप मन्दिर निर्माण करवाने के लिए आर्थिक रूप से सर्वाधिक सहयोग देने के कारण मन्युक और आहुक इन दोनों भाइयों का गुणी गणों में परिगणित होना बताया गया है। उन्हें शिव के पुत्र रूप में ही प्रदर्शित किया गया है। (सन्दर्भ श्लोक 8-9)

दसवें श्लोक में त्रिगर्त राज्य की सीमाओं के भीतर अत्यन्त सौन्दर्य से युक्त कन्दुकाबिन्दुका नदी के किनारे स्थित कीरग्राम नाम के मनोहारी गाँव का उल्लेख किया गया है, जिसमें यह मन्दिर स्थित है। यह क्षेत्र त्रिगर्त नरेश के प्रतिनिधि राजानक लक्ष्मणचन्द्र द्वारा सुरक्षित था।

इसमें राजानक लक्ष्मणचन्द्र की वंश-प्रशस्ति प्रस्तुत की गयी है। यहाँ इस परम्परा को पराक्रमी राजा कन्द से प्रारम्भ किया गया है। इस परम्परा में उसका पुत्र बुद्ध हुआ। बुद्ध का पुत्र विग्रह हुआ जो महायोद्धा था। विग्रह के उपरान्त उसका पुत्र ब्रह्म यहाँ का भूपति बना। ब्रह्म के उपरान्त उसका पुत्र डोम्बक फिर डोम्बक का पुत्र भुवन हुआ। तदुपरान्त भुवन का पुत्र कल्हण कीरग्राम का संरक्षक हुआ। कल्हण के बाद उसका पुत्र अत्यन्त पराक्रमी विल्हण के पास इस क्षेत्र के संरक्षण का कार्यभार आया। त्रिगर्त नरेश के प्रति इसकी निष्ठा के कारण ही त्रिगर्त नरेश हृदयचन्द्र ने अपनी पुत्री लक्षणिका का विवाह विल्हण से करवाया। लक्षणिका से उसके राम और लक्ष्मण नाम के दो पुत्र हुए। (सन्दर्भ श्लोक 11-18)

हालाँकि *History of Kangra*[5] की वंशावली में त्रिगर्त नरेश हृदयचन्द्र का कोई उल्लेख नहीं है। सम्भवतः वहाँ 'त्रिगर्तभूभर्तृ' के स्थान पर 'त्रिगर्तभूभ्रातुः' पद हो, जिसे शिलालेखीय क्षरण के कारण नहीं पढ़ा जा सका हो। सम्भवतः हृदयचन्द्र त्रिगर्त नरेश के भाई हों, जिनकी कन्या से विल्हण का विवाह हुआ हो। जो भी हो, विल्हण के उपरान्त कीरग्राम का कार्यभार राम के पास न जाकर लक्ष्मण के पास चला गया। राम का जीवन विलासितापूर्ण था। वह इस मनोरम ग्राम में रमणियों के सान्निध्य में डूबा रहता था। भगवान् शिव को समर्पित इस मन्दिर के निर्माण के समय कीरग्राम के संरक्षण का दायित्व लक्ष्मणचन्द्र पर ही था। लक्ष्मणचन्द्र की पत्नी का नाम मयतल्ला था।(सन्दर्भ श्लोक 19-22)

राजानक वंशानुकीर्तन के उपरान्त इस क्षेत्र के निवासी सिद्ध नामक व्यापारी के दो धर्मनिष्ठ पुत्रों ज्येष्ठ मन्युक और कनिष्ठ आहुक को स्मरण किया गया है। शिव की अगाध भक्ति में लीन इस शिवलिङ्ग को निरालय देखकर इन्होंने मन्दिर निर्माण का सङ्कल्प लिया। मन्दिर निर्माण से पूर्व इस शिवलिङ्ग के निरालय होने का यहाँ स्पष्ट सङ्केत प्रस्तुत हुआ है। (सन्दर्भ श्लोक 23-27)

मन्युक और आहुक द्वारा यहीं कीरग्राम में ही एक तैलोत्पीडन-यन्त्र (कोल्हू) भी लगवाया गया ताकि शिव मन्दिर में निर्वाधित दीप-दान की व्यवस्था हो सके। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी एक दुकान भी शिव की सेवा के निमित्त समर्पित की। इसके अतिरिक्त नवग्राम में चार हल उत्तम भूमि का टुकड़ा भी समर्पित किया। (सन्दर्भ श्लोक 33-34)

यहाँ मन्युक और आहुक के क्रमशः चार पूर्व-पुरुषों का नामोल्लेख भी हुआ है। इनके पिता सिद्ध का नाम पूर्व में प्रयुक्त होने के साथ पूर्व-पुरुषों के क्रम में पुनर्गणित किया

[5] *History of Kangra*, *Kangra ke Naresh*, Page 74--78

गया है। यहाँ सिद्ध और उनके पिता काहिल, काहिल के पिता पाहिल, पाहिल के पिता शाहिल का उल्लेख है। मन्युक और आहुक के प्रमुख सहयोग के साथ इस वणिक् कुल के लगभग बीस अन्य व्यक्तियों द्वारा भी इस मन्दिर के निर्माण लिए दान दिया गया। कीरग्राम मैदानों और पर्वतों के बीच चले आ रहे व्यापार का एक केन्द्र रहा होगा। व्यापारियों के यहाँ रुकने की व्यवस्था के साथ-साथ सीमा शुल्क का भी प्रावधान रहा होगा। इस मण्डपिका[6] (वणिक्-प्रतिष्ठान) द्वारा राजानक लक्ष्मणचन्द्र के माध्यम से उस समय प्रचलन में रही मुद्रा 'द्रम' के रूप में छः द्रम प्रतिदिन के हिसाब से मन्दिर की व्यवस्था के निमित्त दिये जाते थे। (सन्दर्भ श्लोक 28-30)

दान में राजानक के परिवार के योगदान का भी उल्लेख है। राजानक की माता लक्षणा द्वारा भी इस मन्दिर के निमित्त प्रलम्ब नामक गाँव में एक हल जोती जा सकने वाली भूमि का दान किया गया तथा इस दान की रक्षा करने वाले उत्तराधिकारियों के अभ्युदय और इन वस्तुओं का नाश करने वाले उत्तराधिकारियों की अवनति की प्रार्थना भी इस उद्देश्य से ही की गयी होगी ताकि राजानक लक्ष्मणचन्द्र की आने वाली सन्ततियाँ दान की प्रतिज्ञा से च्युत न हो जाएँ। जिस प्रलम्ब नामक ग्राम का उल्लेख हुआ है यह निश्चित रूप से इस स्थान से दक्षिण में स्थित पहलून नाम का ग्राम ही है, जहाँ आज भी राजानक-वंशजों का निवास है। (सन्दर्भ श्लोक 31-32)

दूसरे शिलालेख में भी प्रशस्तिकार अपना परिचय प्रस्तुत करता है। वह लिखता है कि प्रशस्तिकार कश्मीर के राजा के श्रेष्ठ प्रमातृ भृङ्गक का पुत्र राम है। वह अपनी युवावस्था में इस प्रशस्ति को लिख रहा है। अपनी युवावस्था के माध्यम से वह अपनी योग्यता का परिचय दे देता है। (सन्दर्भ श्लोक 36-37)

जितना महत्त्वपूर्ण कार्य इस ऐतिहासिक घटना को प्रशस्ति-लेखन के माध्यम से प्रस्तुत करना था, उसे प्रस्तर-शिला पर उकेरना किसी भी रूप में उस लेखन से कम नहीं था। शिलालेख के अन्त में गुहक द्वारा इसे प्रस्तर पर उकेरकर इस विवरण को इतिहास के रूप में प्रस्तुत किया है। गुहक के नाम के साथ इसे उकेरे जाने के सन्दर्भ में कुछ अन्य पदों को भी उकेरा गया है, परन्तु वहाँ से यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि उकेरे जाने के स्थान, पत्थर प्राप्ति के स्थान या गुहक के निवास स्थान आदि में से किस ओर सङ्केत किया गया है। अन्त में शककाल भी लिखा है, जो कालक्रम से अस्पष्ट हो गया है।

7 प्रशस्तिकार एवं प्रशस्तिकाल

स्तोत्र समाप्ति से पूर्व अन्तिम श्लोकों में स्तोत्रकारों द्वारा अपने नाम का उल्लेख किया जाता रहा है। प्रथम शिलालेख के अठारहवें श्लोक में ही प्रशस्तिकार अपने नाम का उल्लेख करता है। प्रशस्तिकार 'राम' उमा और शिव से अपने इस प्रयास को फलीभूत करने के लिए प्रार्थना करता है।

इसके उपरान्त प्रथम शिलालेख के अन्त में भी परम्परा के निर्वाहार्थ ही प्रशस्तिकार द्वारा स्वयं का परिचय दिया गया है। यहाँ वह अपने नाम 'राम' के उल्लेख के साथ अपने माता-पिता का नाम शृङ्गारा और भृङ्गक बताता है। यहाँ 'क(वि)हरः या क(वी)श्वरः' पाठ किया गया है। इससे राम की कवियों में श्रेष्ठता भी सिद्ध होती है।

[6] *A Holy Jyotirlinga Vaidyanatha*, Page 17

यहाँ यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि दूसरी प्रशस्ति का लेखक भी 'राम' ही है। वह इस प्रशस्ति के अन्त के दो श्लोकों (36-37) में स्वयं को कश्मीर के राजा के श्रेष्ठ प्रमातृ भृङ्गक के पुत्र रूप में परिचित करवाता है। हालाँकि प्रमातृ शब्द किस अर्थ का द्योतक है यह स्पष्ट नहीं होता परन्तु प्रशस्तिकार का सम्बन्ध कश्मीर से होना निश्चित होता है। साथ ही उसका शिव और पार्वती के प्रति समर्पण भी परिलक्षित होता है।

प्रमातृ शब्द के अर्थ को लेकर स्पष्ट रूप से कुछ भी कह पाना आसान नहीं हैं क्योंकि इसका जो अर्थ प्राप्त होता है वह दार्शनिक पृष्ठभूमि वाला है। 'प्रमा ज्ञानकर्ता, प्रमा द्वारा प्रमेय के ज्ञान को प्राप्त करने वाला अर्थ कोश में उपलब्ध नहीं होता। ज्ञान का कर्ता आत्मा या चेतन पुरुष। विषय से भिन्न द्रष्टा, साक्षी।'[7]

वोगल के अनुसार न्याय प्रबन्धन से जुड़े हुए अधिकारी को ही प्रमातृ कहा जाता था। प्रो॰ जगन्नाथ अग्रवाल के अनुसार कश्मीर के राजा द्वारा राजस्व के निर्धारण हेतु भूमि के मापन-कार्य के निमित्त नियुक्त अधिकारी ही प्रमातृ कहलाता होगा।[8]

एक ही प्रशस्तिकार द्वारा दोनों प्रशस्तियों का लेखन सम्पन्न होना अपने आप में सामान्य बात नहीं है। कवीश्वर राम द्वारा वणिक् भ्राताओं मन्युक और आहुक के इष्ट की विस्तृत स्तुति लिख लेने के उपरान्त इस मन्दिर के वणिक् कुलोत्पन्न निर्माताओं, संरक्षक राजानक और राज्याधिपति के सन्दर्भ में बताने के साथ अन्य दानों का उल्लेख भी कर दिया गया है जो मन्दिर निर्माण के प्रारम्भ से निर्माण पर्यन्त पहली प्रशस्ति लिख लेने के काल तक किये गये। इसके उपरान्त भी मन्दिर की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उसकी सुन्दरता और धार्मिक प्रतिष्ठा की सुरक्षा के निमित्त मन्दिर निर्माण प्रारम्भ होने से लेकर मन्दिर निर्माण के विधिवत् समाप्त हो जाने और वहाँ पर नियमित पूजन कार्य प्रारम्भ हो जाने के बाद तक भी दान किये जाते रहे। बाद के दान प्रथम प्रशस्ति में स्थान प्राप्त नहीं कर सके, क्योंकि तब तक पहली प्रशस्ति लिखी जा चुकी थी। दूसरी प्रशस्ति में उन सभी दानों और दानियों का उल्लेख करके उनके प्रति भी सम्मान व्यक्त किया गया है।

पहली प्रशस्ति के अन्तिम श्लोक में इस प्रशस्ति का काल ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि अस्सीवें वर्ष में रविवार के दिन बताया गया है। यहीं पर जयचन्द्र के राज्य का भी उल्लेख है। अतः स्पष्ट है कि इस देवालय के निर्माण के समय जयचन्द्र ही त्रिगर्त नरेश थे। सम्वत् 80 को लोककाल अर्थात् सप्तर्षि संवत् के साथ जोड़कर ही देखा जा सकता है क्योंकि शारदा लिपि के समान ही सप्तर्षि संवत् का कश्मीर और तत्कालीन पंजाब में सामान्य प्रचलन था। सप्तर्षि संवत् में 100 तक ही गणना का ही नियम था।

'सप्तर्षि संवत् को लौकिक काल, लौकिक संवत्, शास्त्र संवत्, पहाड़ी संवत् या कच्चा संवत् भी कहते हैं। यह संवत् 2700 वर्ष का कल्पित चक्र है। जिसके विषय में यह मान लिया गया है कि सप्तर्षि नाम के सात तारे अश्विनी से रेवती पर्यन्त 27 नक्षत्रों में से प्रत्येक पर क्रमशः सौ-सौ वर्षों तक रहते हैं। 2700 वर्ष में एक चक्र पूरा होकर दूसरे चक्र का प्रारम्भ होता है। जहाँ-जहाँ यह सम्वत् प्रचलित रहा या है वहाँ नक्षत्र का नाम नहीं लिया जाता, केवल 1 से 100 तक के वर्ष लिखे जाते हैं। 100 वर्ष पूरे होने पर शताब्दी का अंक छोड़कर फिर एक से प्रारम्भ करते हैं। कश्मीर के पञ्चाङ्ग तथा कुछ एक पुस्तकों में कभी-कभी प्रारम्भ

[7]हिन्दी विश्वकोश, भाग 14, पृष्ठ 609

[8]*A Holy Jyotirlinga Vaidyanatha*, Page 15

से भी वर्ष लिखे हुए मिलते हैं। कश्मीर वाले इस संवत् का प्रारम्भ कलियुग के 25 वर्ष पूरे होने पर (26वें वर्ष से) मानते हैं परन्तु पुराण तथा ज्योतिष के ग्रन्थों में इस का प्रचार कलियुग के पहले से होना माना गया है।'[9]

शक संवत् और सप्तर्षि संवत् के बीच के वर्षों के अन्तर को राजतरङ्गिणी के इस उद्धरण से समझा जा सकता है, 'राजतरङ्गिणी में कल्हण पण्डित लिखता है इस समय लौकिक (संवत्) के 24वें वर्ष में शक संवत् के 1070 वर्ष बीत चुके हैं। । इस हिसाब से वर्तमान लौकिक संवत् और गत शक संवत् के बीच का अन्तर (1070-24=) 1046=46 है अर्थात् शताब्दी के अङ्करहित सप्तर्षि संवत् में 46 जोड़ने से शताब्दीरहित शक (गत), 81 जोड़ने से चैत्रादि विक्रम (गत), 25 जोड़ने से कलियुग (गत) और 24 या 25 जोड़ने से ई० सन् वर्तमान आता है।'[10]

80 का सप्तर्षि संवत् होने पर भी मन्दिर के काल निर्धारण को लेकर कोई समाधान नहीं निकलता क्योंकि इन दोनों ही प्रशस्तियों में उल्लिखित शक सम्वत् को स्पष्ट रूप से न पढ़ा जाना दुर्भाग्यपूर्ण है। तिथि का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त न होने के कारण मन्दिर निर्माण काल को लेकर मतैक्य नहीं है। दोनों ही शिलालेखों में शककालगताब्दः उत्कीर्ण है। इसके साथ ही शककाल के अङ्क उत्कीर्ण किये जाने पर भी वे स्पष्ट नहीं हैं।

पहले शिलालेख में प्रारम्भ के अङ्क विद्यमान नहीं है। अन्तिम अङ्क 6 पढ़ा जाता है। दूसरे शिलालेख में पहले अङ्क को 7 पढ़ा गया है और बाद के दो अङ्क स्पष्ट नहीं है। इन दोनों शिलालेखों के आधार पर 7...6 पढ़ा जाता है। इस आधार पर सप्तर्षि संवत् के 80 में 46 जोड़ देने पर यह 726 बैठता है। अलेग्ज़ेंडर कनिंघम दूसरे शिलालेख के अङ्कों को शककाल 726 स्वीकारते हैं।[11] शककाल 726 स्वीकारने पर सप्तर्षि संवत् 80 में 24 जोड़ने से ई० सन् 804 आता है। शककाल 726 में 78 जोड़ने पर भी यह ई० सन् 804 ही होगा है। इस आधार पर मन्दिर निर्माण काल नौंवी शताब्दी का प्रारम्भ ही ठहरता है।

प्रथम शिलालेख के अन्त में ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को अस्सीवें वर्ष में जो रविवार का उल्लेख हैं, उसको लेकर वुह्लर का कहना है कि यह तिथि 13 मई, 804 ठहरती है, परन्तु इस दिन मङ्गलवार था न कि रविवार। कनिंघम की गणना में इस विसङ्गति के कारण बुह्लर ने इस समय को शककाल 1126 माना है जो ई० सन् 1204 ठहरता है। इस आधार पर मन्दिर निर्माण काल नौवीं शताब्दी से चार शताब्दी आगे जाकर तेरहवीं शताब्दी का प्रारम्भ ही ठहरता है। इसे अभिलेखीय अध्ययन और मन्दिर वास्तुशिल्प और मूर्तिशिल्प के आधार पर सही ठहराया जा सकता है।[12] *History of Kangra* में नौवीं शताब्दी में कटोचवंशीय राजा जयचन्द्र द्वारा इस मन्दिर का निर्माण होना बताया गया है।[13] इसी पुस्तक में 490 कटोचवंशीय राजाओं की सूची में राजा जयचन्द्र का काल 950 ई. बताया है।[14] इस आधार पर यह दसवीं शताब्दी का काल हुआ। इस सूची में 444वें क्रम

[9]प्राचीनलिपिमाला, परिशिष्ट पृष्ठ 159-160

[10]प्राचीनलिपिमाला, परिशिष्ट पृष्ठ 160

[11]Alexander Cunningham CSI, *Archological Survey of India, Report for the year 1872-73*, Volume V, Page 180

[12]*A Holy Jyotirlinga Vaidyanatha*, Page 12--13

[13]*History of Kangra*, Page 08

[14]*History of Kangra*, Page 77

के राजा का नाम जयसिंह चन्द्र है। इनका काल 1200 ई० से 1221 ई० उल्लिखित है। यह नाम जयचन्द्र से भले ही भिन्न है परन्तु तेरहवीं शताब्दी के काल के हिसाब से युक्तियुक्त है।

एक अन्य पक्ष भी इस सन्दर्भ में विचारणीय है। चम्बा गजेटियर में कीरों के सन्दर्भ में पर्याप्त सामग्री है। सक्षेप में देखें तो 820 ई० के लगभग भरमौर पर कीरों का आक्रमण हुआ और उन्होने वहाँ के शासक लक्ष्मीवर्मन् की हत्या कर दी।[15] चम्बा गजेटियर के उल्लेखों के आधार पर ही कीरों का तिब्बती मूल का होना भी पुष्ट होता है।[16] वे कश्मीर और डुग्गर से सहयोग प्राप्त कश्मीरियों के पड़ोसी थे।[17]

बृहत्संहिता के काल पर विचार करें और बृहत्संहिता में कीरों के उल्लेख को देखें तो छठीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कीरों का होना निश्चित हो जाता है।[18] मन्दिर का निर्माण काल ई.सन् 804 अर्थात् नौवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्वीकार करने पर इस क्षेत्र में कीरों का आधिपत्य सातवीं या आठवीं शताब्दी में स्वीकारना पड़ेगा। इस स्थिति में तिब्बती मूल के कीरों का इस कीरग्राम से होकर भरमौर की ओर जाने को भी स्वीकार करना पड़ेगा। मन्दिर निर्माण काल ई० सन् 1204 स्वीकारने पर इस स्थान पर कीरों का आधिपत्य काल भरमौर के शासक लक्ष्मीवर्मन् की हत्या 820 ई० के उपरान्त स्वीकार किया जा सकता है। इस स्थिति में कीरों का भरमौर के रास्ते कीरग्राम में आधिपत्य का पक्ष प्रबल होता है। पहले पक्ष को स्वीकार कर लेने पर मन्दिर निर्माण तक कीरग्राम में कीरों का आधिपत्य रहने ही सम्भावनाओं को नकारा नहीं जा सकता। ऐसा स्वीकार कर लेने पर राजानक लक्ष्मणचन्द्र के पूर्व पुरुषों के काल को लेकर असमञ्जस की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। कीरग्राम में कीरों का आधिपत्य काल नवमीं और दसवीं शताब्दी होने पर तेरहवीं शताब्दी में मन्दिर निर्माण काल तक होता है तब राजानक लक्ष्मणचन्द्र के पूर्व पुरुषों के पास इस कीरग्राम के संरक्षण के लिए 11वीं और 12वीं सदी का पर्याप्त काल उपलब्ध होता है। मन्दिर का निर्माण नौवीं शताब्दी के प्रारम्भ में होने पर और कीरों का आधिपत्य नौवीं और दसवीं शताब्दी में होने पर शिलालेखों में इस क्षेत्र का नाम किसी भी स्थिति में कीरग्राम तो नहीं होता।

सम्प्रति इस स्थान का प्रचलित नाम बैजनाथ है। बैजनाथ वैद्यनाथ शब्द का ही अपभ्रंश रूप है क्योंकि यहाँ अधिष्ठित शिवलिङ्ग को वैद्यनाथ, इस नाम से अनेक संस्कृत भाषा में लिखित अर्वाचीन पुस्तकों में उद्धृत किया गया है। बैजनाथ को बारहवीं शताब्दी तक या उसके बाद भी कीरग्राम के नाम से जानने के पीछे अभिलेखों में उसका प्रयोग ही सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण है।

अतः इस क्षेत्र में कीरों का आगमन नौवीं शताब्दी में होना ही अधिक युक्तिपूर्ण है। वे निश्चित रूप से इस क्षेत्र पर आधिपत्य जमा लेने के उपरान्त लम्बी कालावधि तक यहाँ रहे होंगे। उनके दीर्घकालिक प्रभुत्वपूर्ण निवास के कारण ही इस क्षेत्र का नाम कीरों के नाम पर पड़ गया होगा। बाद में सत्ता पर उनकी पकड़ ढीली हो जाने के उपरान्त भी इसका नाम कीरग्राम ही रहा होगा तथा पूर्ववर्ती नाम उनकी आँधी में तिरोहित हो गया होगा। अतः मन्दिर का निर्माण तेरहवीं शताब्दी में होना ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है क्योंकि कीरों

---

[15] *Chamba Gazetteer*, Page 100–101

[16] *Chamba Gazetteer*, Page 106--107

[17] *Chamba Gazetteer*, Page 111--112

[18] त्रिगर्ती, राजीव कुमार, 'कीरग्राम: ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक अध्ययन', *Pratnakirti*, Volume 3, Issue 1, 2022, Page 40-41

से अपने पूर्व के सीमान्त क्षेत्र को छुड़ाने के लिए त्रिगर्त नरेश को लम्बा सङ्घर्ष करना पड़ा होगा। ई० सन् 1009 में महमूद गजनवी के आक्रमण के उपरान्त इस क्षेत्र को सम्भवतः अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया होगा। त्रिगर्त नरेश ने इस क्षेत्र के संरक्षण का कार्यभार कन्द को दिया। लगभग 200 वर्षों के उपरान्त उसी वंश परम्परा में विल्हण और लक्षणा के दो पुत्रों रामचन्द्र और लक्ष्मणचन्द्र में से छोटा लक्ष्मणचन्द्र कीरग्राम का संरक्षक बना होगा।

कनिंघम[19] कुछ अन्य उकेरे हुए अक्षरों के सन्दर्भ में भी बात करते हैं। मंदिर के एक खंभे पर 'संवत् 10221 वैशाख प्रविष्टे 27' उकेरा गया है। 10221 त्रुटिपूर्ण होने पर भी इन उकेरे हुए अक्षरों के पाठ के सन्दर्भ में कनिंघम कहते हैं कि यह तिथि वैशाख के 27वें वर्ष में संवत् 1221 (ईस्वी सन् 1164) ही है, जिसमें इसके बाद लेखक का नाम आता है, जिसे सन्तोषजनक ढंग से नहीं पढ़ा जा सकता, क्योंकि यह बड़े अक्षरों में होने पर भी टाकरी का घसीट रूप है। दूसरे खम्भे पर भी छोटे टाकरी अक्षरों में ऐसा ही एक लेख हैं, जिसमें पहाड़ी संवत् का वर्ष 74 अङ्कित है, जो ईस्वी संवत् के 98 के बराबर होने से सम्भवतः 1198 या 1298 ई० ही हैं। इनके साथ ही टाकरी में दो अन्य आलेख भी हैं इन्हें बड़ी सावधानी से उकेरा गया है। ये आसानी से सुपाठ्य हैं, परन्तु दुर्भाग्य से तिथिरहित है। वे इस प्रकार पढ़े जाते हैं–

1. श्री ठाकुर प्रमार कर्म सिंह पुत्र,
2. श्री ठाकुर कन चन्द्र पुत्र वण वीरा।

यहाँ भले ही कुछ अधिक जानकारी नहीं मिलती परन्तु संवत् 1221 के ईस्वी सन् 1164 की समकक्षता से यह स्पष्ट होता है मन्दिर निर्माण काल ई० सन् 1204 से पूर्व ये स्तम्भ इस स्थान पर थे। दूसरे शिलालेख में उल्लिखित निरालय शिवलिङ्ग पर मन्युक और आहुक द्वारा मन्दिर निर्माण से पूर्व भी मन्दिर होने के प्रमाणरूप में देखा जा सकता है। पूर्व निर्मित मन्दिर कब बना और कितने समय तक रहा इस सम्बन्ध में कुछ भी कह पाना कठिन है। मन्युक आहुक के पूर्वपुरुषों के उल्लेख और सत्ता के स्थानीय महत्त्व के चलते राजानक लक्ष्मणचन्द्र की राजानकीय वंशपरम्परा के विवरणों से हम स्वाभाविक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि कीरों की शक्ति के क्षीण होने के साथ ही यहाँ मन्दिर का निर्माण हुआ होगा।

8 शिलालेखीय निष्कर्ष

पहले अभिलेख के द्व्यर्थक श्लोक अपने गूढ भावों एवं संश्लिष्ट पदावली के चलते प्रशस्तिकार की विद्वत्ता का परिचय देने में पूर्णतः समर्थ हैं। **गौरीश्वर स्तोत्र** के श्लोक बड़े ही भक्तिभाव से युक्त एवं काव्य के महनीय गुणों से पूर्ण हैं। पहले शिलालेख में 39 और दूसरे शिलालेख में उत्कीर्ण 37 श्लोक हैं। इस तरह दोनों शिलालेखों को मिलाकर 76 श्लोक हैं। यहाँ दोनों शिलालेखों में प्रयुक्त श्लोकों के छन्दों की संख्या इस प्रकार है:- बसन्ततिलका (01+0=01), शार्दूलविक्रीडितम् (03+04=07), अनुष्टुप् (12+04=16), उपजाति (08+01=09), वंशस्थ (02+0=02), मञ्जुभाषिणी (01+0=01), आर्या (04+23=27), उपेन्द्रवज्रा

[19] *Archological Survey of India, Report for the year 1872-73*, Page 181--182

(01+0=01), इन्द्रवज्रा (02+0=02), रथोद्धता (05+01=06), स्रग्धरा (0+02=02), अपरवक्त्र (0+01=01) तथा गीति (0+01=01)।

दोनों ही शिलालेखों में अधिकांश श्लोक शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों की छटा बिखेरने के साथ मन्दिर निर्माण के इतिहास को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत करने में महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में उपस्थित हुए हैं। मन्दिर निर्माण से सम्बन्धित विविध पक्षों का इन दोनों अभिलेखों में उल्लेख है। कुछ विवरण दोनों में ही कतिपय हेर-फेर के साथ समान ही हैं परन्तु बहुत से विवरण दोनों में भेदों के साथ प्रस्तुत हुए हैं। दोनों शिलालेखों के समानता और विविधता वाले दोनों ही पक्षों पर कीरग्राम और मन्दिर निर्माण के सन्दर्भ में तथ्यपूर्ण विचार करना ऐतिहासिक दृष्टिकोण से युक्तियुक्त होगा तथा भले ही समस्त शङ्काओं का न सही, बहुतायत का निराकरण करने में समर्थ होगा, एतदर्थ संक्षेप में यहाँ इनका सारांश प्रस्तुत किया जा रहा है।

पहला शिलालेख गणों के दोनों स्वामियों शिव और पार्वती की स्तुति के साथ प्रारम्भ होता है। इसके उपरान्त पहले श्लोक में प्रस्तुत शिलालेख में प्रयुक्त श्लोकों के माध्यम से शिव और पार्वती के भक्तिपूर्वक आह्वान की बात की गई है। इसके उपरान्त दूसरे श्लोक से लेकर सत्रहवें श्लोक पर्यन्त स्तुतिपरक अंश हैं। वे सारे श्लोक पार्वती और शिव को समर्पित हैं। प्रत्येक श्लोक द्व्यर्थक है। प्रत्येक श्लोक में एक अर्थ शिव को समर्पित है और दूसरा शक्ति पार्वती को। कुल मिलाकर ये श्लोक शिव और पार्वती के प्रति भक्तिभाव से गुम्फित हैं तथा इनमें विविध संज्ञाओं के माध्यम से उनके पौराणिक महत्त्व को भी प्रतिपादित करवाया गया है। इसमें 18 से 20 श्लोक इन स्तुतिपरक श्लोकों के उपसंहार रूप में प्रस्तुत किए गये हैं।

प्रथम शिलालेख के अठारहवें श्लोक में ही प्रशस्तिकार अपने नाम का उल्लेख करता है। प्रशस्तिकार 'राम' उमा और शिव से अपने इस प्रयास को फलीभूत करने के लिए प्रार्थना करता है। यहाँ यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि दूसरी प्रशस्ति का लेखक भी 'राम' ही है। वह इस प्रशस्ति के अन्त के दो श्लोकों (36–37) में स्वयं को कश्मीर के राजा के श्रेष्ठ प्रमातृ भृङ्गक के पुत्र रूप में परिचित करवाता है। हालाँकि प्रमातृ शब्द किस अर्थ का द्योतक है यह स्पष्ट नहीं होता, परन्तु प्रशस्तिकार का सम्बन्ध कश्मीर से होना निश्चित होता है। साथ ही उसका शिव और पार्वती के प्रति समर्पण भी परिलक्षित होता है।

इस प्रशस्ति में 39 श्लोक हैं और मन्दिर का निर्माण करवाने वाले, मन्दिर का निर्माण करने वाले, क्षेत्रीय व्यवस्थापक एवं संरक्षक और प्रशस्तिकार के परिचय के साथ मुख्य संरक्षक के नामोल्लेख के लिए कुल 19 श्लोक ही शेष बचते हैं।

शिलालेखों के सन्दर्भ में पूर्वविदित ही है कि इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में राजाओं से होता है। ऐसे राजवंशीय अभिलेखों में नगरों, राजाओं की विशिष्टताओं, उनके विजय-प्रयाणों और दानादि से सम्बन्धित होते हैं। कीरग्राम–बैजनाथ के इन दोनों अभिलेखों में भी त्रिगर्त के तत्कालीन अधिपति राजा जयचन्द्र और कीरग्राम की सुरक्षा में त्रिगर्त के अधिपति द्वारा नियुक्त लक्ष्मणचन्द्र का उल्लेख है।

इक्कीसवें श्लोक से लेकर सैंतीसवें श्लोक तक मन्दिर निर्माण के विवरण को प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम दो श्लोक प्रशस्तिकार और मन्दिर निर्माणकाल को प्रस्तुत करते हैं। दूसरे शिलालेख में प्रारम्भिक तीन श्लोकों में मङ्गलाचरण है। इसके उपरान्त पैंतीसवें श्लोक तक

जो भी लिखा गया है वह मन्दिर निर्माण पर केन्द्रित है। अन्तिम दो श्लोकों में प्रशस्तिकार के सन्दर्भ में जानकारी और मन्दिर निर्माण काल पर प्रकाश डाला गया है।

पहले शिलालेख में कीरग्राम शब्द उपलब्ध नहीं होता। इसका कारण इसके अधिक भाग का स्तुतिपरक होना तथा अल्पविवरणात्मक होना भी हो सकता है। दूसरे शिलालेख में तीन स्थलों पर कीरग्राम पद का प्रयोग हुआ है—"कीरग्रामोऽभिरामो..." श्लोक 10 (पङ्क्ति 10–11), "तस्मिन्कीरग्रामं..." श्लोक 22 (पङ्क्ति 21) तथा "कीरग्रामेस्ति..." श्लोक 33 (पङ्क्ति 29)। इससे स्पष्ट है कि मन्दिर निर्माण और प्रशस्ति-लेखन के समय तक इस स्थान का नाम कीरग्राम ही था।

इस स्थान का सम्प्रति प्रचलित नाम बैजनाथ है। बैजनाथ वैद्यनाथ शब्द का ही अपभ्रंश रूप है क्योंकि यहाँ अधिष्ठित शिवलिङ्ग को वैद्यनाथ, इस नाम से अनेक संस्कृत भाषा में लिखित पुस्तकों में उद्धृत किया गया है। अनेक पौराणिक आख्यानों के सन्दर्भों के आधार पर भी शिव को रावण द्वारा समर्पित सिरों को पुनः स्थापित करने के कारण वैद्यनाथ इस संज्ञा से विभूषित किया जाता है। इस विषय पर लोक-आस्थाओं का अनुसरण करने पर इसी वैद्यनाथ स्थल को रावण की तपःस्थली के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। कालान्तर में अर्वाचीन क्षेत्रीय धार्मिक श्लोकबद्ध विवरणों में भी इस स्थल को रावण की तपोभूमि के रूप में प्रस्तुत करने के प्रयत्न ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

यदि तेरहवीं शताब्दी में मन्दिर निर्माणकाल के समय के इन दोनों शिलालेखों में प्रस्तुत विवरणों पर दृष्टिपात करें तो वैद्यनाथ नाम का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। इन विवरणों के आधार पर इस क्षेत्र का नाम कीरग्राम ही था। इस सन्दर्भ में दूसरे प्रस्तरलेख की उपलब्धता के कारण ही सन्देह का कोई भी स्थान नहीं दिखता। मन्दिर के नीचे से निकलने वाले जलस्रोत को आज के समय खीरगङ्गा के नाम से जाना जाता है। हालाँकि कीरग्राम से निःसृत होने के कारण इसका नाम कीरगङ्गा ही युक्तियुक्त है। कीरगङ्गा को संस्कृत पुस्तकों में क्षीरगङ्गा के रूप में प्रस्तुत किया गया है और आज प्रचलित खीरगङ्गा पद को सीधे रूप में क्षीरगङ्गा के अपभ्रंश रूप में देखा जा सकता है, जो सीधे-सीधे कीरगङ्गा पद से निर्गत नहीं लगता, परन्तु बारहवीं शताब्दी के अभिलेखों में उल्लिखित कीरग्राम के आधार पर इतना तो स्पष्ट है कि मूल शब्द कीरगङ्गा ही है, क्योंकि इस जलस्रोत का उद्गम ठीक मन्दिर की पश्चिमोत्तर दिशा में स्थित सीढ़ियों के नीचे 'बिनवा' नदी के प्रवाह के साथ ही है। कीरग्राम का नाम वैद्यनाथ से होते हुए आज बैजनाथ हो गया है और अभिलेखों के अतिरिक्त कीरग्राम का कहीं कोई अस्तित्व नहीं बचा है, तथापि कीरगङ्गा पद खीरगङ्गा के रूप में कीरग्राम की ऐतिहासिकता को सहेजने में आज भी जीवन्त प्रमाण के रूप में प्रस्तुत है।

बैजनाथ के बारहवीं शताब्दी तक या उसके बाद भी कीरग्राम के नाम से जानने के पीछे अभिलेखों में उसका प्रयोग ही सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण है। कीरग्राम अर्थात् कीरों का ग्राम। कीरग्राम नामकरण के पीछे जो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता है, वह यही है कि इसका नाम कीरग्राम क्यों पड़ा। यदि यह कीरों का ग्राम था तो ये कीर थे कौन, यदि वे यहाँ के निवासी नहीं थे तो उनका मूल निवास स्थान कहाँ था, यदि वे बाहर से आए तो इस क्षेत्र में उनके आगमन का काल क्या है और उनके यहाँ आने के पीछे कौन-सा मुख्य कारण था। नामकरण से एक बात तो स्पष्ट है कि कीरों ने यहाँ आने के उपरान्त एक लम्बी कालावधि तक निवास भी किया होगा और सम्भवतः इस क्षेत्र को अपने अनुकूल बनाकर इसका नामकरण भी किया होगा। प्रश्न तो और भी हैं, जैसे कि किन परिस्थितियों में उन्होंने इस क्षेत्र को छोड़ा

और यदि नहीं छोड़ा तो वे कहाँ समा गये? कीरग्राम में उनके अस्तित्व को कहाँ और किन जातियों में खोजा जा सकता है। मेरे विचार से इस सन्दर्भ में हम इतिहास के उन पृष्ठों को खँगालेंगे जो खाली तो नहीं है परन्तु पूर्णतः भरे होने की सम्भावना भी नहीं है। सम्भवतः मेरी अल्पज्ञता मुझे किसी निर्णय तक न पहुँचने दे तथापि इस सन्दर्भ में मैं कुछ विद्वानों के मतों को उद्धृत करते हुए यथासम्भव प्रयत्न करूँगा और आशा करूँगा कि आने वाले समय में विद्वान् इतिहासविदों को इतिहास की इन अनसुलझी गुत्थियों को पूर्णतः सुलझाने में सफलता प्राप्त हो।

त्रिगर्त नरेश जयचन्द्र का उल्लेख दोनों शिलालेखों में होने से सिद्ध होता है कि राजा का इस कार्य में पूर्ण सहयोग था। वह धर्मध्वजा का संरक्षक था। दोनों शिलालेखों में राजानक लक्ष्मणचन्द्र को त्रिगर्त नरेश अधिक स्थान दिया गया है। लक्ष्मणचन्द्र बड़ा ही सुयोग्य और पराक्रमी राजानक था। वह त्रिगर्त नरेश के पारिवारिक सम्बन्धों के साथ वंश-परम्परा से ही त्रिगर्त राज्य के प्रति समर्पित होने के कारण सत्ता का विश्वासपात्र भी था। वह कीरग्राम और आस-पास के क्षेत्र की प्रशासनिक ईकाई का अध्यक्ष या संरक्षक मात्र ही नहीं अपितु सर्वेसर्वा था।

शिलालेख में जिस तरह राजानक लक्ष्मणचन्द्र की नौ पीढ़ियों का उल्लेख करके लगभग दो सौ वर्षों की अविच्छिन्न वंश परम्परा को प्रस्तुत किया गया है, यदि यहाँ जालन्धर अधिराज जयचन्द्र के पूर्व पुरुषों में से किसी एक का भी उल्लेख किया गया होता तो मन्दिर निर्माण काल का संशय उसी स्थान पर पूर्णतः समाप्त हो जाता, जिसे लेकर एक स्तर तक आज भी माथापच्ची करनी पड़ती है। लक्ष्मणचन्द्र की माता लक्षणिका के पिता हृदयचन्द्र का उल्लेख 489 राजाओं की अतिविस्तृत वंश परम्परा में जयचन्द्र से पूर्व कहीं प्राप्त नहीं होता। जयचन्द्र के पूर्व इस नाम का होना भी समस्त सन्देहों को समाप्त कर देता।

मुख्य संरक्षक को छोड़ दें तो अधिकांश नामों के साथ माता-पिता या पिता के नाम को रखा गया है। स्वतः सिद्ध न होने वाले स्थलों पर नाम के साथ वर्ण का उल्लेख भी हुआ है। प्राचीन परम्परा के अनुसार परिचय के साथ वंश और वर्ण का प्रयोग होता था, लगभग उसका पालन यहाँ किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वणिक् तीनों ही वर्णों के लोग अपने-अपने वर्णाश्रय धर्म के अनुसार ज्ञानवान्, पराक्रमी और कुशल व्यापारी थे, इसके विवरणों से स्पष्ट हो जाता है।

मन्दिर के वास्तुकारों आसिक और सम्मन का सुशर्मपुर अर्थात् काँगड़ा का निवासी होना और प्रशस्ति-टङ्कक गुहक का भी क्षेत्रीय होना कला के क्षेत्र में गौरवान्वित करने वाला है, क्योंकि इस बहुत छोटे से व्यापारिक केन्द्र में इस तरह का भव्य निर्माण किया जाना निःसन्देह एक उपलब्धि के रूप में ही देखा जा सकता है। प्रशस्ति की पट्टिकायें कालक्रम से भले ही धुँधली पड़ने लगी हों, परन्तु इतने मनोयोग से सुस्पष्ट टङ्कण स्वयं ही इनकी विशिष्टता की कथा कह देते हैं। अन्य वर्गों के साथ क्षेत्रीय शिल्पकारों का भी महत्त्व था और उन्हें भी समाज में पूर्ण सम्मान दिया जाता था। महत्त्वपूर्ण निर्माणों में उनकी भूमिका अग्रगण्य रही है।

दोनों शिलालेखों के अन्दर कुछ समान एवं दानादि के क्रमिक विवरणों को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता हैः-

-- मुख्य संरक्षकः जालन्धर (त्रिगर्त) अधिराज जयचन्द्र

- (शिलालेख:1-श्लोक: 39)
- (शिलालेख:2-श्लोक: 6)

-- स्थानीय संरक्षक: कीरग्राम राजानक लक्ष्मणचन्द्र

- (शिलालेख:1-श्लोक:21-26)
- (शिलालेख:2-श्लोक: 18-21)

-- स्थानीय संरक्षक वंशवृक्ष:कन्द, बुद्ध, विग्रह, ब्रह्म, डोम्बक, भुवन, बिल्हण,

- बिल्हण एवं लक्षणा के पुत्र राम और लक्ष्मण (चन्द्र)
- (शिलालेख:2-श्लोक:11-17)

-- स्थानीय संरक्षक की पत्नी: मयतल्ला

- (शिलालेख:2-श्लोक:22)
- मुख्य-निर्माता-- सिद्ध और छिन्ना के पुत्र मन्युक और आहुक (वणिक्पुत्र)
- (शिलालेख:1-श्लोक: 27-30)
- (शिलालेख:2-श्लोक: 7-10, 23-27)

-- मुख्य निर्माता-- पूर्वपुरुष परिगणन: साहिल, पाहिल, काहिल, सिद्ध।

- (शिलालेख:2-श्लोक: 28)
- मन्दिर-वास्तुकार--
- नायक पुत्र आसिक।
- ठोढुक पुत्र सम्मन।
- (शिलालेख:1-श्लोक: 36)

-- प्रशस्तिकार-- राम

- (शिलालेख:1, श्लोक:18 राम, श्लोक:38-39 शृङ्गारा-भृङ्गक का पुत्र राम)
- (शिलालेख:2-श्लोक: 36-37 प्रमातृ भृङ्गक का पुत्र राम)

-- प्रशस्तिटंकक:

- (शिलालेख:2 के अन्त में: गुहक)

-- काल:

- (शिलालेख:1-श्लोक: 37 संवत्सर 80, अन्त में शककाल ....6(?))
- (शिलालेख:2 के अन्त में: शककाल 7(26))

-- प्रमुख दान: (शिलालेख:1)

- 1,श्लोक: 31-32, दैवज्ञ रल्हण पुत्र आसुक।
- एक वाह भूमि में से दो द्रुण धान्य योग्य।
- नवग्राम। ब्राह्मण।
- 2,श्लोक: 33, प्रज्ञावान् गणेश्वर पुत्र गोविन्द।

- आधा हल।
- नवग्राम। ब्राह्मण।
- 3,श्लोक: 34, जीवक पुत्र देपिक और मल्हिका।
- मन्दिर प्राङ्गण। वणिक्।
- 4, श्लोक: 35, मन्युक-आहुक।
- विविध दान। वणिक्।

-- (शिलालेख:2)

- 1, श्लोक: 29, बीस वणिक् पुरुष
- मन्दिर निर्माण में सहयोग
- 2, श्लोक: 30, राजानक लक्ष्मणचन्द्र द्वारा।
- व्यापारिक प्रतिष्ठान से प्रतिदिन छः द्रम आवण्टन।
- कीरग्राम। क्षत्रिय।
- 3, श्लोक: 31,राजानक लक्ष्मणचन्द्र की माता लक्षणा (लक्षणिका) ।
- एक हल भूमि।
- प्रलम्ब ग्राम। क्षत्रिय।
- 4, श्लोक: 33-34, मन्युक-आहुक।
- तैलोत्पीडन यन्त्र, दुकान।
- कीरग्राम। वणिक्।

References

1. Cunningham, Alexander. (1875/1966). *Archaeological Survey of India, Report for the year 1872-73, Volume V.* Office of the Superintendent of Govt. Printing, Calcutta / Indological Book House, Varanasi.
2. Handa, Devendra. (2018). *A Holy Jyotirlinga Vaidyanath Śiva Temple Baijnath (HP).* Himachal State Museum, Shimla.
3. Anonymous. (1926/1995). *District Gazetteer (Kangra Gazetteer) 1924-25.* Kangra Cultural Society, Dharmshala, HP.
4. Negi, Thakur Sen (Ed.). (1963). *Himachal Pradesh District Gazetteer (Chamba).* Standard Printing Press, Batala.
5. Katoch, Sumer Bahadur Singh, Katoch, Jasmer Bahadur Singh. (2022). *Katoch's The Trigarth Empire.* Kila, Village: Lalpur, Distt.: Rupnagar (PB).
6. वसु, नगेन्द्रनाथ और विश्वनाथ. (1927). *हिन्दी विश्वकोश*. Visvakosh Lane, Bhagbazar, Calcutta.
7. देव, राजा राधाकान्त. (2024 विक्रमी). *शब्दकल्पद्रुम*. चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी.
8. रणपतिया, अमर सिंह. (2010). *गद्दी भरमौर की जनजातीय संस्कृति एवं कलाएँ*. हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला.
9. वराहमिहिर. (1897). *बृहत्संहिता*. लक्ष्मीवेङ्कटेश छापाखाना, कल्याण मुम्बई.

10. माथुर, विजयेन्द्र कुमार. (1990). *ऐतिहासिक ग्रन्थावली*. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.
11. हटेला, चिन्तामणि 'मणि'. (वर्ष अनुपलब्ध). *त्रिपुरी का कलचुरि वंश*. हटेला ग्रन्थागार, हिन्दू समाज प्रेस, कीडगंज, प्रयाग.
12. भिक्षु, स्वामी तारानन्द. (वर्ष अनुपलब्ध). *वैद्यनाथ माहात्म्य*.
13. तीर्थ, स्वामी तारानन्द. (1921). *तन्त्रतत्त्व प्रकाशः*. पं॰ हरभगवान शर्मणः प्रबन्धेन, बाम्बे मशीन यन्त्रालय, लवपुर (लाहौर).
14. कुलावधूत, प्रह्लादानन्दाचार्य. (1983). *जालन्धरपीठ-दीपिका* (सम्पादकः पृथुराम शास्त्री). निर्मल प्रकाशन, तुलसी सदन, वसदी, डाकघरः कोहाला, जिला काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश.
15. ओझा, पं॰ गौरीशङ्कर हीरा चन्द. (1975 विक्रमी). *भारतीय प्राचीनलिपिमाला*. स्काटिश मिशन इन्डस्ट्रीज प्रेस, अजमेर.
16. त्रिगर्ती, राजीव कुमार. (2022). *कीरग्रामः ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक अध्ययन*. *Pratnakirti*, Volume 3, Issue 1.